नमामि भक्त वत्सलं

(श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकृत श्रीरामचरितमानस में अद्भुत स्तुति नक्षत्र मण्डल)

व्याख्याकार
स्वामी शंकरानन्द

नमामि भक्त वत्सलं

(श्री गोस्वामी तुलसीदासकृत श्रीरामचरितमानस में अद्भुत स्तुति नक्षत्रमण्डल)

नमामि भक्त वत्सलं

(श्री गोस्वामी तुलसीदासकृत श्रीरामचरितमानस में अद्भुत

स्तुति नक्षत्रमण्डल)

व्याख्याकार

स्वामी शंकरानन्द

सेंट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट

मुम्बई - 400 072

© सर्वाधिकार–सेंट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट,मुम्बई

प्रथम संस्करण – अप्रैल 2009 -- 1000 प्रतियाँ

प्रकाशक :
सेंट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट
सांदीपनी साधनालय
साकी विहार रोड, मुंबई – 400 072, भारत
फोन : (022) 28572367, 28575806
फैक्स : (022) 28573065,
ईमेल : **ccmtpublications@chinmayamission.com**
Website : www.chinmayamission.com

अमेरिका में वितरण केन्द्र :
चिन्मय मिशन वेस्ट
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, 560 ब्रिजटाऊन पाइक,
लैंगहोर्न, पी.ए. 19053, यू.एस.ए.
फोन : (215) 396–0390, फैक्स : (215)396–9710
www.chinmayapublications.org
publications@chinmaya.org

शब्द संयोजना : मंजु त्यागी

मुद्रक –
राज प्रिंटर्स
जयदेवी नगर, मेरठ

मूल्य – रु0 70.00

ISBN 9788175974555

SWAMI TEJOMAYANANDA
Camp at : CHINMAYA MISSION
Post Box No-5, Chinmaya Tapovanam,
Palakkad-678 001
Phone: (0491)-2527366, E-mail:chinpgt@rediffmail.com

ॐ

Date : 28.1.2009

आशीर्वचन

आकाश में स्थित २८ नक्षत्रों के मण्डल के समान श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी ने भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की २८ स्तुतियों का एक सुन्दर मण्डल रचा है। यह विषय अत्यंत रोचक और मन को आश्चर्यचकित करनेवाला है। नक्षत्रमण्डल और स्तुतिमण्डल में जो साम्य है वह चिन्तकों के लिये शोध का विषय है तो भक्तों के लिये आनन्दमय रस का। इस विषय पर कतिपय विद्वान् टीकाकारों ने जो प्रकाश डाला है उसी के आधार पर श्रीमती मञ्जु त्यागीजी ने प्रस्तुत पुस्तक 'नमामि भक्तवत्सलम्' का ग्रथन किया है। इसे करने में उनकी श्रद्धा, भक्ति, लगन और अध्ययनशीलता देखते ही बनती है। उनका हार्दिक अभिनन्दन! प्रभुकृपा और गुरुकृपा उनपर सदैव बनी रहे।

मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक के अध्ययन से पाठकों के हृदय में भक्तवत्सल भगवान् श्रीराम की कृपा से रसमयी भक्ति का संचार होता रहेगा।

प्रभुसेवा में,

तेजोमयानन्द

प्रिय के साथ तादात्म्य ही प्रेम का वास्तविक मापदण्ड हैं। भक्त अपने व्यक्तिगत जीवभाव को विस्मृत कर, जब प्रेम में अपने भगवान् के साथ तादात्म्य को प्राप्त हो जाता हैं, तब उस प्रेम की परिसमाप्ति पराभक्ति या अनन्य भक्ति कहलाती हैं। आत्मज्ञान का जिज्ञासु आध्यात्मिक विधान के अनुसार उपाधियों के साथ अपने निम्नस्तर के तादात्म्य को त्यागने के लिये बाध्य होता हैं। अनात्मा के तादात्म्य को त्यागने पर ही शुद्ध आत्मस्वरूप की पहचान हो सकती हैं।

–प० पू० गुरुदेव स्वामी चिन्मयानन्द जी

नमामि भक्त वत्सलं

विषयानुक्रमणिका

स्तुति सं०	विवरण	पृष्ठ संख्या
	प्रस्तावना	१
१.	ब्रह्मदेवकृत स्तुति (बालकाण्ड)	११
२.	कौसल्याजीकृत स्तुति (बालकाण्ड)	१६
३.	अहल्याकृत स्तुति (बालकाण्ड)	२६
४.	भृगुपतिकृत स्तुति (बालकाण्ड)	३३
५.	सुनयनाजीकृत स्तुति (बालकाण्ड)	३७
६.	जनकजीकृत स्तुति (बालकाण्ड)	४१
७.	भरद्वाजकृत स्तुति (अयोध्याकाण्ड)	५१
८.	बाल्मीकिकृत स्तुति (अयोध्याकाण्ड)	५७
९.	अत्रिकृत स्तुति (अरण्यकाण्ड)	८५
१०.	शरभंगकृत स्तुति (अरण्यकाण्ड)	९१
११.	सुतीक्ष्णकृत स्तुति (अरण्यकाण्ड)	९५
१२.	कुंभजमुनिकृत स्तुति (अरण्यकाण्ड)	१०२
१३.	जटायुकृत स्तुति (अरण्यकाण्ड)	१०७
१४.	हनुमान्जीकृत स्तुति (किष्किन्धाकाण्ड)	११४
१५.	विभीषणकृत स्तुति (सुंदरकाण्ड)	१२१
१६.	सर्वदेवकृत स्तुति (लङ्काकाण्ड)	१२५
१७.	ब्रह्मदेवकृत स्तुति (लङ्काकाण्ड)	१३०
१८.	इंद्रकृत स्तुति (लङ्काकाण्ड)	१३८

स्तुति सं०	विवरण	पृष्ठ संख्या
१६.	शंभुकृत स्तुति (लङ्काकाण्ड)	१४४
२०.	वेदकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड)	१५२
२१.	शंभुकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड)	१६१
२२.	सुग्रीवादिकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड)	१७०
२३.	अंगदकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड)	१७५
२४.	पुरजनकृत प्रथम स्तुति (उत्तरकाण्ड)	१८१
२५.	सनकादिककृत स्तुति (उत्तरकाण्ड)	१८७
२६.	पुरजनकृत द्वितीय स्तुति (उत्तरकाण्ड)	१६६
२७.	वसिष्ठकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड)	२०२
२८.	नारदकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड)	२१३

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ

प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदासकृत श्रीरामचरितमानस भक्ति और ज्ञान का महान ग्रन्थ होने के साथ-साथ साहित्य का भी बेजोड़ नमूना है। इसमें स्थान-स्थान पर अति गूढ़ संकेतों के द्वारा रहस्यमय विषयों का ज्ञान दिया गया है। मानस में काव्यकला का एक ऐसा ही अद्भुत एवं अलौकिक उदाहरण है - आकाश स्थित २८ नक्षत्रों के मण्डल का प्रतिरूप - भगवान् श्रीरामजी की २८ स्तुतियोंरूपी नक्षत्रमण्डल की रचना ! अर्थात् चन्द्रमा के आकाशीय भ्रमण के मार्ग में पड़ने वाले अश्विनी आदि २८ नक्षत्रों के समान ही श्रीरामचरितमानस में भी २८ स्तुतियोंरूपी नक्षत्र-मण्डल है।

यहाँ पर ध्यान दें कि मानस में स्तुतियों को ही नक्षत्र का प्रतीक कहा गया है एवं इन स्तुतियों द्वारा मण्डलाकार भी पूर्ण हुआ दीखता है। प्रमाणस्वरूप देखते हैं कि मानस में नारदजी भगवान् श्रीरामजी से वरदान माँगते हुए कहते हैं कि -

राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम।।(३/४२क)

श्रीरामजी की भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है; उसमें 'राम' यही नाम पूर्णचन्द्रमा होकर, और भगवान् के अन्य सब नाम यह विमल तारागण (नक्षत्र समुदाय) होकर भक्तों के हृदयरूपी आकाश में निवास करें। स्तुति में भगवान् के गुणों का वर्णन करने वाले नाम ही होते हैं। गुणवर्णन विविध सार्थक नामों से किया जाता है। इसलिये अपरनाम = गुणवर्णन करने पर अन्य नाभों के समुदाय

अर्थात् **स्तुतियाँ** - ये ही उपरोक्त दोहे में कहे गये **उडगन = नक्षत्र** समुदाय (२८ नक्षत्र) हैं।

अब देखते हैं कि **मण्डल** का अर्थ है ऐसी (गोलाकार)रचना, जिसमें जहाँ से शुरु हुआ, उसी स्थान पर बिना लौटे ही पहुँचा जाये। यहाँ पर स्तुतियों के रूप में एक मण्डल भी पूर्ण हुआ दृष्टिगोचर होता है। अर्थात् मानस की पहली स्तुति (जय-जय सुरनायक-बालकाण्ड दोहा १८६) ब्रह्माजी ने की है, तो अंतिम स्तुति करने वाले नारदजी द्वारा की गयी स्तुति (उत्तरकाण्ड दो० ५१) के अंत में आता है

प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम।।

अर्थात् अंतिम स्तुतिकर्त्ता, पहली स्तुति करने वाले, ब्रह्माजी के घर गये। इस प्रकार श्रीरामचरितमानस में बालकाण्ड (दो० १८६) में ब्रह्मदेवकृत स्तुति से लेकर उत्तरकाण्ड (दो० ५१) में नारदजी द्वारा की हुई स्तुति तक, कुल २८ स्तुतियों के रूप में यह स्तुति-नक्षत्रमण्डल भी पूर्ण हो जाता है।

मानस में जो ये २८ स्तुतियों का नक्षत्रमण्डल है, इसकी एक विशेषता यह भी है कि इन सब स्तुतियों का एक स्थान पर संकलन करें, तो हमें समस्त उपनिषदों का सार उपलब्ध हो जाता है।

हम देखते हैं कि उपनिषदों का उदघोष है -

येनाश्रुतँ श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति।

-छान्दोग्य उपनिषद् - ६-१-३

जिस (परम ब्रह्म के ज्ञान) से अश्रुत श्रुत हो जाता है। अमत मत हो जाता है और अविज्ञात विशेष रूप से ज्ञात हो जाता है।

यही बात गीताजी के १५वें अध्याय में भगवान् ने कही है कि - जो ज्ञानी पुरुष मुझे इसप्रकार तत्त्व से पुरुषोत्तम जानता है **'स सर्वविद'** है। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजी को भगवान् श्रीरामजी के दर्शन हो गये, तो वे सर्वज्ञ हो गये। यही कारण है कि तुलसीदासजी की काव्यप्रतिभा चमत्कृत करने वाली और पूर्णरूप से अलौकिक है। उन्हें काव्य के साथ-साथ अन्य सब कलाओं की भी सिद्धि प्राप्त हो गयी। इसीलिये उन्होंने मानस में स्तुतियों को नक्षत्र मण्डल का प्रतिरूप बनाने में ज्योतिष के अद्भुत ज्ञान का प्रदर्शन किया है।

इसलिये नक्षत्रों से स्तुतियों की इस गूढ़ रहस्यमयी समानता को ठीक प्रकार से आत्मसात् करने के लिये हमें भी, सर्वप्रथम नक्षत्रमण्डल के बारे में कुछ थोड़ी सी जानकारी अवश्य होनी चाहिये। अस्तु !

आकाश में चन्द्रमा के विशिष्ट नियत मासिक (चक्रीय)भ्रमण मार्ग में पड़ने वाले २८ क्षेत्रों में से प्रत्येक क्षेत्र विशेष को **नक्षत्र**[१] कहते हैं, और प्रत्येक नक्षत्र, उस क्षेत्र विशेष के महत्त्वपूर्ण तारे के नाम से जाना जाता हैं।

नक्षत्र शब्द को, व्युत्पत्ति के हिसाब से देखें, तो **न=चन्द्रमा, क्षत्र=क्षेत्र अथवा वास स्थान; अर्थात् नक्षत्र माने, चन्द्रमा के भ्रमण मार्ग का क्षेत्र,** और मण्डल माने गोलाकार आकृति, इस प्रकार चन्द्रमा के द्वारा नक्षत्रों में, मासिक भ्रमण का मार्ग, चक्राकार होने के कारण इसे **नक्षत्र मण्डल** कहते हैं। आकाश में इन नक्षत्रों का

१. वेदों में नक्षत्रों को देवताओं, और मृत्यु के पश्चात् पुण्यात्माओं के निवास स्थान की संज्ञा भी दी गयी है, और पौराणिक रूप से, नक्षत्रों को चन्द्रमा की पत्नियाँ, दक्ष प्रजापति की पुत्रियाँ भी माना जाता है। कुछ संतों का कहना है कि नक्षत्र वे स्थान हैं जहाँ पर, स्थानान्तरित होकर, हमारे कर्मफल, संग्रहित होते हैं, और फिर ये नक्षत्र जीव को कर्मफल प्रदान करते हैं।

एक निश्चित अनुक्रम है, और चन्द्रमा क्रम-क्रम से प्रतिदिन लगभग, एक-एक नक्षत्र में वास करते हुए, २८ दिन बाद, बिना वापिस हुए, फिर से पहिले नक्षत्र में पहुँच जाता है।

प्रत्येक नक्षत्र का एक अधिपति तारा होता है, उसके साथ कुछ अन्य तारे होते हैं, एक अधिपति देवता होता है, एक निश्चित स्वभाव एवं उससे जुड़े फल होते हैं। इस प्रकार से वैदिक ज्योतिष के प्रत्येक क्षेत्र में, नक्षत्रों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। देखते हैं कि चन्द्रमा को एक ही नक्षत्र में दोबारा से पहुँचने में २७.३ दिन लगते हैं, अब इस संख्या को पास के पूर्णांक में परिवर्तित करें, तो २७ की संख्या भी मानी जा सकती है और २८ भी मान सकते हैं। परंतु यजुर्वेद के १६वें काण्ड के आठवें सूक्त में २८ नक्षत्र ही बताये गये हैं। गर्ग्य ऋषि ने भी 'गार्ग्य नक्षत्र सूक्त' (अथर्वण वेद) में यजुर्वेद का द्रष्टान्त देते हुए, नक्षत्रों की संख्या, **अभिजित् सहित**, २८ ही बताई है। इसलिये प्रारम्भ में नक्षत्रों की संख्या २८ ही प्रस्तावित की गयी थी, लेकिन बाद में यथार्थ गणना की दृष्टि से २७ की संख्या अधिक सटीक पायी गयी। इसलिये शुरु के २८ नक्षत्रों में से एक नक्षत्र को गणना में से निकालने की बात आयी, लेकिन अपौरुषेय वेदों की बात को नकारना भी असंभव था, इसलिये **अभिजित्** को अप्रकट नक्षत्र मान लिया गया। इसप्रकार आजकल मुख्य रूप से २७ नक्षत्र माने जाते हैं, और **अभिजित्** नामक २८वाँ नक्षत्र अप्रकट माना जाता है, तथा केवल फल की दृष्टि से इसकी गणना की जाती है।

अभिजित् के अस्तित्व के बारे में एक सुन्दर प्रमाण, एवं वर्तमान काल में मुख्य नक्षत्रों की सूची में से उसके निकाले जाने का एक और कारण, पुरुषार्थ के आधार पर नक्षत्रों के वर्गीकरण

के रूप में सामने आता है। नक्षत्रों को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है जैसे कि - गुणधर्म के आधार पर, चार पुरुषार्थों के आधार पर और लिङ्ग, जाति विशेष आदि के आधार पर भी नक्षत्रों का विभाजन किया जाता है।

शास्त्रों में मानवजीवन के चार पुरुषार्थ बताये गये हैं, जो अपने अनुक्रम में इस प्रकार हैं - १. धर्म, २. अर्थ, ३.काम और ४. मोक्ष। खोजकर्ताओं ने पाया है कि आकाश स्थित प्रत्येक नक्षत्र इन चारों में से किसी एक पुरुषार्थ पर बल देने वाली, एक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। और इसी कारण से, व्यक्ति अपने जीवन में किस पुरुषार्थ को अपना लक्ष्य बनाकर आगे बढ़ता है - यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके ग्रह किस पुरुषार्थ वाले नक्षत्र के प्रभाव में हैं।

हम देख चुके हैं कि नक्षत्रमण्डल में नक्षत्रों का एक निश्चित अनुक्रम होता है, परन्तु नक्षत्रों में पुरुषार्थों के बँटवारे के अनुक्रम में एक और विचित्र बात देखने में आयी। नक्षत्रों की क्रम संख्या १ से ४ तक पुरुषार्थों का भी सीधा क्रम चला। अर्थात् -

पहला नक्षत्र अश्विनी = धर्म नक्षत्र
दूसरा नक्षत्र भरणी = अर्थ नक्षत्र
तीसरा नक्षत्र कृत्तिका = काम नक्षत्र
चौथा नक्षत्र रोहिणी = मोक्ष नक्षत्र

अब देखते हैं कि यहाँ से पुरुषार्थों का उलटा क्रम शुरु हो गया क्योंकि -

पाँचवा नक्षत्र मृगशीर्ष = मोक्ष नक्षत्र
छठा नक्षत्र आर्द्रा = काम नक्षत्र
सातवाँ पुनर्वसु = अर्थ नक्षत्र
आठवाँ पुष्य = धर्म नक्षत्र

अब पहले पुरुषार्थ धर्म पर लौट आये। लेकिन अब आगे पुनः धर्म से ही सीधा क्रम शुरु हो गया -

नौवाँ नक्षत्र आश्लेषा = धर्म नक्षत्र
दसवाँ मघा = अर्थ नक्षत्र
ग्यारहवाँ पूर्वा फाल्गुनी = काम नक्षत्र
बारहवाँ उत्तरा फाल्गुनी = मोक्ष नक्षत्र

यहाँ से पुनः रोहिणी के बाद वाली पुरुषार्थ की उल्टी गिनती शुरु हो जाती है, अर्थात् फिर से -

तेरहवाँ नक्षत्र हस्त = मोक्ष नक्षत्र
चौदहवाँ चित्रा = काम नक्षत्र
पन्द्रहवाँ स्वाति = अर्थ नक्षत्र
सोलहवाँ विशाखा = धर्म नक्षत्र

अब फिर से पुरुषार्थों का सीधा क्रम शुरु होता है -

सतरहवाँ नक्षत्र अनुराधा = धर्म नक्षत्र
अठारहवाँ ज्येष्ठा = अर्थ नक्षत्र
उन्नीसवाँ मूल = काम नक्षत्र
बीसवाँ पूर्वाषाढ़ा = मोक्ष नक्षत्र

अब फिर पुरुषार्थों का उलटा क्रम शुरु हो जाता है -

इक्कीसवाँ नक्षत्र उत्तराषाढ़ा = मोक्ष नक्षत्र
बाइसवाँ नक्षत्र श्रवण = अर्थ नक्षत्र

यहाँ पर एक आश्चर्यचकित करने वाली बात यह हुई है कि अब तक के चलने वाले अनुक्रम के अनुसार जब इक्कीसवाँ नक्षत्र उत्तराषाढ़ा, **मोक्ष** नक्षत्र था, तो उसके बाद बाइसवाँ नक्षत्र एक **'काम'** नक्षत्र आना चाहिये था, लेकिन वह गायब हो गया, और उसके स्थान पर सीधे **श्रवण के रूप में बाईसवाँ नक्षत्र एक अर्थ नक्षत्र** आ गया है, और उसके बाद -

तेइसवाँ नक्षत्र धनिष्ठा = धर्म नक्षत्र

यहाँ पर हम काम नक्षत्र को सूची में लिये बिना ही, उसे छोड़कर आगे क्यों बढ़ गये? इसका उत्तर है कि पुराने समय में, नक्षत्र समूह में, २८ नक्षत्रों की गणना होती थी, और **सूची में २१वें नक्षत्र के बाद छूटा हुआ, यही वह काम नक्षत्र अभिजित् है, जो वर्तमान काल की गणना से अलग, अट्ठाइसवाँ नक्षत्र है। यह उत्तराषाढ़ा एवं श्रवण नक्षत्रों के बीच में स्थित है।** यही अकेला नक्षत्र ऐसा है जिसका मुख्य तारा वेगा, सूर्य की परिक्रमा वाले मार्ग से काफी दूरी पर स्थित होने के कारण इसकी स्थिति को ठीक-ठीक जान पाना कठिन होता है। कदाचित् अभिजित् को सूची से छोड़ने का एक कारण यह भी रहा हो ! पूर्वकाल में यह नक्षत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता था, यह इस बात से भी प्रमाणित होता है कि इस नक्षत्र के अधिपति देवता, सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी हैं। वर्तमान काल में यह नक्षत्र समूह का मुख्य अंश तो नहीं है लेकिन कभी-कभी धार्मिक कार्यों में इसका प्रयोग होता है।

सूची में धनिष्ठा नक्षत्र के बाद फिर से पुरुषार्थों का सीधा क्रम चल पड़ता है -

शताभिषक = धर्म नक्षत्र
पूर्वा भाद्रपदा = अर्थ नक्षत्र
उत्तरा भाद्रपदा = काम नक्षत्र, और अंत में
रेवती = मोक्ष नक्षत्र

यह भी विलक्षण बात है कि नक्षत्रों का अनुक्रम, जीवन से सम्बन्धित **धर्म** पुरुषार्थ के प्रभाव वाले नक्षत्र से आरम्भ होकर, इसका समापन **मोक्ष** (आध्यात्मिक विकास की पराकाष्ठा) पुरुषार्थ वाले नक्षत्र के रूप में हुआ है।

इस प्रकार हमने देखा कि आकाश स्थित नक्षत्रमण्डल में प्रत्येक नक्षत्र का एक निश्चित अनुक्रम, नाम, रूपाकार, अपना अधिपति देवता, निश्चित तारों की संख्या, और मानव जीवन के किसी एक निश्चित पुरुषार्थ से उसका सम्बन्ध होता है।

इसी प्रकार से श्रीरामचरितमानस में गोस्वामीजी ने भगवान् की स्तुतियों का भी पुरुषार्थ से सीधा सम्बन्ध दिखाया है। वे कहते हैं कि **'बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि'** *मैं श्रीरघुनाथजी के उस निर्मल यश का वर्णन करता हूँ, जो चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को देने वाला है,* और हम जानते हैं कि भगवान् की स्तुति में उनके गुणों का, उनके निर्मल यश का ही तो वर्णन होता है।

इधर श्रीरामचरितमानस में अद्भुत बात यह देखने में आती है कि इसमें विभिन्न भक्तों द्वारा की गयी, प्रभु श्रीरामजी की २८ स्तुतियों का, आकाश स्थित नक्षत्रमण्डल से - अनुक्रम, नाम, रूपाकार, अधिपति देवता, तारों की संख्या और मानव जीवन के पुरुषार्थ से सम्बन्ध - इन सभी स्तरों पर अद्भुत साम्य है। यहाँ तक कि ज्योतिषशास्त्र-ग्रन्थों में जहाँ पर दो नक्षत्रों का मिलकर एक आकार बताया गया है, वहाँ पर उन दोनों स्तुतियों के स्तुति कर्ताओं में भी परस्पर सम्बन्ध है। उदाहरण के रूप में पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी - इनका मिलकर एक आकार दीखता है, तो मानस में भी इन्हीं दोनों नक्षत्रों की क्रमसंख्याओं पर आने वाली स्तुतियों के करने वालों, सुतीक्ष्ण और ऋषि अगस्त्य का शिष्य और गुरु का सम्बन्ध है। सुतीक्ष्ण का उल्लेख **'मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना'** इस प्रकार से इसी हेतु किया गया है, वरना अन्य किसी भी मुनि के वर्णन में, वह किसका शिष्य है, यह नहीं बताया गया!

विशेष बात यह है कि जो आकाशस्थ नक्षत्र बिल्कुल पास-पास दिखाई देते हैं, वे स्तुतिनक्षत्र भी वैसे ही बिल्कुल पास-पास हैं; जैसे कि - विशाखा-अनुराधा, ज्येष्ठा-मूल, पूर्वाषाढ़ा-उत्तराषाढ़ा, पूर्वा भाद्रपदा-उत्तरा भाद्रपदा; ये नक्षत्रों के जोड़े पास-पास हैं, तो वैसी ही स्थिति इनसे सम्बन्धित स्तुतियों की भी है। देखते हैं कि सर्वदेवकृत स्तुति (विशाखा) लङ्काकाण्ड दो० ११० के पूवार्ध में समाप्त होती है और उसी दोहे के उत्तरार्ध में ब्रह्मदेवकृत स्तुति (अनुराधा) का प्रारम्भ होता है। अनुराधा और ज्येष्ठा किंचित दूरी पर लेकिन समीप ही हैं, तो अनुराधा स्तुति दो० १११ में समाप्त होती है और दो० ११२ में ज्येष्ठा स्तुति शुरु हो जाती है, लेकिन बीच में आठ चौपाइयाँ जानबूझकर अन्य विषय की दी हुई दिखाई देती हैं। ज्येष्ठा और मूल भी किंचित दूरी पर हैं, तो ज्येष्ठा स्तुति दो ११३ में समाप्त होती है और दो० ११४ में मूल नक्षत्र स्तुति करने वाले शिवजी आते हैं लेकिन बीच में कुछ चौपाइयाँ हैं। पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा बिल्कुल पास हैं, तो उत्तरकाण्ड में वेदस्तुति दो० १३(क) में समाप्त होती है और वेद जाते हैं; और दो० १३(ख) में शंभुनाथ स्तुति करने के लिये आते हैं।

इसप्रकार के अद्भुत साम्य का और अधिक विस्तारपूर्वक वर्णन, इस पुस्तक में आगे प्रत्येक स्तुति की व्याख्या के अंत में दिया गया है। इस खोज के मूल जनक मानस-राजहंस पं० त्रिपाठीजी हैं। लेकिन आगे इसी विषय का सुन्दर विस्तार, हमें **परम पूज्य स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वतीजी दण्डीस्वामी** द्वारा रचित व्याख्या ग्रन्थ **'मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका'** में देखने को मिलता है। परम पूज्य स्वामी प्रज्ञानानन्दजी द्वारा की गयी मूल व्याख्या तो मराठी भाषा में थी, लेकिन पूज्य स्वामीजी ने स्वयं ही उसका

हिन्दी भाषा में अनुवाद भी किया था। पूज्य स्वामीजी के भक्तगणों ने **'श्रीरामचरितमानस प्रेमी मण्डल'** नाम से एक ट्रस्ट बनाया हुआ है, इन भक्तगणों की सद्भावना के फलस्वरूप यह हिन्दी अनुवाद गोबिन्दभवन कार्यालय गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित होकर सर्वसाधारण को सुलभ हुआ।

हमारी इस पुस्तक में, मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका के नक्षत्र-स्तुति साम्य को प्रकट करने वाले, उक्त अंश से बहुत से अतिसुन्दर एवं अमूल्य विचार लिये गये हैं। कहीं-कहीं पर कुछ अंश उक्त पुस्तक से उद्धृत भी हैं। इन अंशों को अपनी इस पुस्तक में प्रयोग करने की अनुमति के रूप में, **'श्रीरामचरितमानस प्रेमी मण्डल'** एवं गीताप्रेस प्रबन्धन की महान अनुकम्पा के लिये, 'नमामि भक्त वत्सलं' पुस्तक के प्रकाशक हृदय से आभारी हैं।

सद्गुरुदेव की कृपा से, खोज करने पर, नक्षत्र-स्तुति-साम्य के बारे में, इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य सामग्री प्राप्त हुई, जो साधकों के लाभार्थ, प्रस्तुत पुस्तक में संकलित की गयी है।

इस **'नमामि भक्त वत्सलं'** पुस्तक में श्रीरामचरितमानस की समस्त स्तुतियों की व्याख्या, चिन्मय मिशन के महान् संत, वेदान्त मर्मज्ञ परम पूज्य स्वामी शंकरानन्दजीकृत है। इस पुस्तक के संकलन एवं प्रकाशन की प्रेरणा हमारे चिन्मय मिशन के अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष, महान् संत तत्त्वज्ञ परम पूज्य स्वामी तेजोमयानन्दजी की कृपा और आशीर्वाद के रूप में प्राप्त हुई। इन पूजनीय गुरुजनों सहित समस्त गुरुपरम्परा के श्रीचरणों में नत-मस्तक -

मंजु त्यागी
(संकलन कर्ता)

स्तुति संख्या - १

ब्रह्माजीकृत स्तुति (बालकाण्ड) - अश्विनी नक्षत्र

छं० - जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता।।
पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई।।
जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा।।
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा।।
जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा।।
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा।।
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना।।
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा।।

-दो० १८६ के अन्तर्भूत छन्द

अर्थ सहित व्याख्या -

स्तुति करने का नियम यह है कि अपने दुःखों को ज्यादा स्पष्ट न कहें। भगवान् परब्रह्म परमात्मा की महिमा को स्पष्ट कहें। भगवान् के गुण, सामर्थ्य का वर्णन स्तुति में होना चाहिए।

जितना अधिक भगवान् की महिमा का वर्णन स्तुति में होगा उतना ही अधिक उसका प्रभाव जल्दी देखने में आयेगा। यह स्तुति एक आदर्श स्तुति है, अर्थात् सार्वभौमिक प्रार्थना है। जीवन में मोह, अविद्या, अज्ञान आदि कोई भी समस्या हो, ये प्रार्थना सबके लिए लागू होती है। जैसे यहाँ पर ब्रह्मा जी भी ये चाहते हैं कि रावण से भगवान् सुरक्षा दिलावें लेकिन स्तुति भर में कहीं इसका सीधे-सीधे उल्लेख नहीं है, लेकिन शब्दों की योजना इस प्रकार की है कि उनसे भाव पता लग जाता है। जैसे कह दिया कि **'हे भगवान्! आप असुरारि हो'**, तो इसका अर्थ हो गया कि आप अपने नाम को सार्थक करते हुए असुरों का विनाश करो।

इसके पीछे यह मनोविज्ञान है कि यदि हम अपने दुःखों, संकटों का स्मरण करते हैं, तो स्मरण करने से वे और सशक्त होते हैं। यदि हम शांति चाहते हैं, तो हम यह सोचें कि हम शांतस्वरूप हैं, तो शांति आयेगी अशांति मिटेगी। इसीलिये आनन्दस्वरूप परमात्मा का स्मरण करने से दुःख मिटते हैं। इस स्तुति में परमात्मा का स्वरूप ज्ञात होता है। देवता लोग कहते हैं – **'जय जय सुरनायक जन सुख दायक प्रनतपाल भगवंता'** आप देवताओं के भी स्वामी हैं। इसमें भाव यह भी हो गया कि स्वामी का काम अपने अधीनस्थ लोगों की रक्षा करना होता है इसलिये हम देवताओं की रक्षा कीजिए। आप अपने भक्तों को सुख देने वाले हैं (आपके भक्त रावण से दुःखी हैं आप उनका दुःख दूर करिये)। जो आपकी शरण में आते हैं, आप उनका पालन करने वाले हैं; ऐसे भगवान् का हम स्मरण करते हैं।

आप गौ और विप्रों की अर्थात् धर्म की रक्षा करने वाले हैं। विप्र लोगों का मुख्य काम धर्मशास्त्र को जानना और जो धर्म नहीं जानते उन्हें धर्म के बारे में बताना है। जो लोग धर्म को न

जानकर अधर्म की ओर चले गये हैं उन्हें धर्म की बात सीधे-सीधे सुनने में रुचि नहीं है, विप्र लोग उन्हें कहानी, घटना के माध्यम से धर्म सिखाते हैं।

इस प्रकार ये विप्र भगवान् का ही कार्य (धर्म की रक्षा का कार्य) करते हैं, इसीलिये इन विप्रों की रक्षा का कार्य भगवान् स्वयं करते हैं। गाय का दूध सत्वगुण को बढ़ाने वाला है। सत्वगुणी व्यक्ति ही धर्म की ओर बढ़ेगा इसलिये भगवान् गाय की रक्षा करते हैं। इस समय पृथ्वी भी गाय का रूप धारण करके इसलिये आयी है कि भगवान् हमारी रक्षा करेंगे।

'जय असुरारी'- हे भगवान्! आप असुरों का नाश करने वाले हो, आपकी जय हो! असुर हमारी ही निषेधात्मक वृत्तियाँ - जैसे काम, क्रोध, लोभ आदि हैं। भगवान् का स्मरण इन सबका नाश करता है। आप लक्ष्मीपति नारायण हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये। आप देवताओं और पृथ्वी का पालन करने वाले हो। आपके कार्य बड़े ही अद्भुत हैं। आप अवतार लेते हैं, तो विचित्र लीलाएँ करते हैं। आपका रहस्य (मर्म) कोई नहीं जानता। आपकी मायाशक्ति जगत् की रचना करके जीवों को भ्रम में डालती है।

भगवान् आपका स्वभाव ही कृपालु है, आप दीनों पर दया करने वाले हैं। ऐसे भगवान् से हम प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे ऊपर कृपा करें। जिन्होंने अहंकार का त्याग कर दिया है ऐसे व्यक्ति को दीन कहते हैं और ऐसे दीन व्यक्ति, भगवान् को विशेष प्रिय हैं।

पहले छंद में लक्ष्मीपति भगवान् नारायण (परमात्मा का सगुण रूप) की वंदना की गई। अब अगले छंद में मायातीत परमात्मा की वंदना करते हैं।

'जय जय अबिनासी'- आप अविनाशी हो, सर्वत्र व्यापक हो। जैसे आकाश सब घटों के भीतर-बाहर सर्वत्र समान रूप में विद्यमान है ऐसे ही परमात्मा सबके हृदय में विद्यमान हैं। भगवान् परमानन्दस्वरूप हैं। इस प्रकार स्तुति में भगवान् के सत-चित-आनन्द लक्षणों का स्मरण कर रहे हैं।

'अबिगत गोतीतं'- वह परमात्मा जो इन्द्रियों की पहुँच के परे है; वही परमात्मा सगुणरूप धारण करके परम पवित्र चरित्र करते हैं। परमात्मा मायातीत है, माने माया के अधीन नहीं है, माया उसके अधीन है। माया की उपाधि को धारण करके वह ईश्वर बनता है, उसका हम स्मरण करते हैं। वह मुक्ति दायक (मुकुंदा) है।

'जेहि लागि बिरागी'- परमात्मा तभी प्राप्त होता है जब व्यक्ति विषयों से विरक्त हो और उसे परमात्मा में प्रेम हो। ऐसे ही मुनिलोग मोह से मुक्त हो जाते हैं और उनके सारे दुःख भी दूर हो जाते हैं। उनका योगक्षेम भगवान् स्वयं वहन करते रहते हैं। वे तो दिन-रात भगवान् का गुणगान करते रहते हैं और दूसरों को सुनाते रहते हैं - यही सर्वोत्तम जीवन का विधान है। ऐसे सच्चिदानन्द भगवान् राम की जय हो। **भगवान् राम की जय बोलने का अर्थ है कि हमारे हृदय में चल रहे देवासुर संग्राम में भगवान् राम की जय हो। हमारे हृदय में भगवान् ही वास करें और समस्त असुरों सहित रावण निकल भागे।**

अब ईश्वर का वर्णन करते हैं। **'जेहि सृष्टि उपाई'** परमात्मा ही त्रिगुणात्मक (सत्व, रजस, तमस) माया की उपाधि को धारण करके जगत् की रचना करता है। इस कार्य में परमात्मा के साथ में कोई दूसरा (दूजा) सहायक नहीं है। माने

परमात्मा स्वयं ही, सारे जगत् का अभिन्न निमित्त और उपादान, दोनों कारण है।

ऐसे पापों को दूर करने वाले भगवान् हमारी चिंता करें। भगवान् तो निष्पाप हैं, सो जब कोई भगवान् का स्मरण करता है तो व्यक्ति के पाप स्वभावतया दूर होते हैं। हम तो ठीक-ठाक न भक्ति जानते हैं, न पूजा जानते हैं। पूजा तो तब हो, जब भक्ति हो। **'जो भव भय भंजन'** हमने जो अज्ञान के कारण अपने भीतर राग-द्वेष रूपी कल्पना का संसार बना रखा है, जिसको सत्य समझने के कारण हम दुःख उठाते हैं; उसके भय को भगवान् ही दूर करने वाले हैं। वे मुनियों के मन को आनन्द देने वाले हैं और विपत्तियों के समूह का विनाश करने वाले हैं।

मन, वाणी और कर्म (सभी स्तरों) से हम चतुराई छोड़कर सच्चाई के साथ आपकी शरण में आये हैं। हे भगवान्! आपकी महिमा को तो सरस्वती, वेद और शेष नाग भी पूर्ण रूप से नहीं जानते। ऋषि लोग भी आपकी महिमा का वर्णन करते रहते हैं लेकिन अंत नहीं पाते। वेद भी बार-बार कहते रहते हैं कि भगवान् को निरहंकारी लोग प्रिय हैं। माने जब अहंकार दूर हो तब परमात्मा प्राप्त होता है; परमात्मा और अहंकार दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते। ज्ञानी व्यक्ति अहंकार को दूर करने के लिये इसे मिथ्या करके जानता है और भक्त भगवान् को ही सब कुछ मानता है; अपने अहंकार को इस प्रकार तुच्छ बना कर अहंकार दूर करता है। देवता लोग कहते हैं कि इसीलिये हम तो इस प्रकार दीन भाव से प्रार्थना करते हैं कि आप हम पर द्रवित हों।

'भव बारिधि मंदर'- आप संसार रूपी समुद्र के लिये मंदराचल पर्वत के समान हैं। मंदराचल पर्वत ने समुद्र का मंथन

कर दिया तो समुद्र में फेना उठने लगा। समुद्र व्याकुल हो गया। ऐसे ही आप संसार रूपी समुद्र को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले हैं। आप सब प्रकार से सुन्दर हैं। श्रेष्ठता के क्रम में शारीरिक सौन्दर्य से श्रेष्ठतर चारित्रिक सौन्दर्य और उससे श्रेष्ठ मन का सौन्दर्य होता है परन्तु आपने सगुण रूप धारण किया, तो आप में सब प्रकार का सौन्दर्य है। सौन्दर्य माने सुखदायी, आनन्द देने वाला। आप समस्त गुणों के पुंज हो और आप आनन्दस्वरूप हो।

आध्यात्मिक रूप से देखें तो अपने अन्दर सद्गुण जो आते हैं, वह परमात्मा का ही रूप है। जो वस्तु निरपेक्ष आनन्द है वह परमात्मा है। अपने अन्दर परमात्मा की उपस्थिति को सुखानुभूति, चेतना, गुण, प्रेम आदि लक्षणों के रूप में पहचानना चाहिए। स्तुति में आगे कहते हैं - **'मुनि सिद्ध सकल सुर'** जितने मुनि, सिद्ध, देवता लोग भय के कारण पीड़ित हैं, ये सब मस्तक झुका कर आपको प्रणाम कर रहे हैं।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - श्रीरामचरितमानस में की गयी यह भगवान् राम की पहली ही स्तुति है और आकाश स्थित नक्षत्र मण्डल में अनुक्रम के हिसाब से पहला नक्षत्र अश्विनी है। यह अनुक्रम की दृष्टि से इस स्तुति और अश्विनी नक्षत्र के बीच साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - नाम की दृष्टि से इस स्तुति और अश्विनी नक्षत्र को देखें, तो इस नक्षत्र का नाम सूर्यपत्नी **'संज्ञा'** के दूसरे नाम **'अश्विनी'** *(संज्ञा ने एक बार पृथ्वी पर आकर घोड़ी = अश्विनी, का रूप धारण किया था, और तब उसके*

कारण सूर्य को भी पृथ्वी पर आना पड़ा था) के ऊपर पड़ा है। और '**अश्विनी**' शब्द का दूसरा अर्थ है - व्यापने वाली। इधर इस स्तुति में भी देखते हैं कि भगवान् के विविध स्वरूपों का व्यापक दृष्टि से वर्णन है, और '**सब घटबासि ब्यापक**' ऐसा कहा भी है। यह नाम की दृष्टि से साम्य हो गया।

३. आकार-रूप साम्य - आकार में भी अद्भुत साम्य है, अश्विनी नक्षत्र का रूप अश्वमुख के समान है और स्तुति में कहा गया है कि '**सिंधुसुता प्रिय कंता**', और सिंधुसुता (लक्ष्मीजी) को अपना भाई उच्चैःश्रवा अश्व, प्रिय तो होगा ही।

४. तारे संख्या साम्य - तारों की दृष्टि से देखें, तो अश्विनी नक्षत्र में तीन तारे हैं, और इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भी सगुण निराकार ब्रह्म, श्रीनारायण भगवान् और विष्णु भगवान्, ये तीन तारे हैं।

५. देवता साम्य - नक्षत्र देवता की दृष्टि से साम्य देखें, तो अश्विनी नक्षत्र के देवता अश्विनौ हैं। अश्विनी ने सूर्य को मनुष्य रूप से पृथ्वी पर आने को विवश किया और तब अश्विनी कुमारों के रूप में, सूर्यपुत्र उत्पन्न हुए। कह सकते हैं कि सूर्य ही अश्विनीकुमार रूप से जन्मा, क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि पति ही पत्नी के उदर से पुत्ररूप से जन्मता है। और उसी प्रकार से यह अश्विनी स्तुति '**राम सच्चिदानन्द दिनेस**' (सूर्य) को पृथ्वी पर आकर पुत्ररूप होने को विवश करती है। यह देवता की दृष्टि से साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य - नक्षत्र से सम्बन्धित पुरुषार्थ की दृष्टि से देखें, तो अश्विनी नक्षत्र का सम्बन्ध **धर्म** पुरुषार्थ से है, और मानस में ही शंकरजी कहते हैं -

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।

करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।

तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

*जब-जब **धर्म का ह्रास** होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं, और वे ऐसा अन्याय करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता तथा ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के (दिव्य) **शरीर धारण** कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं।* यहाँ पर इस स्तुति में ब्रह्माजी संकेत के द्वारा भगवान् को **धर्म की रक्षा** करने के लिये ही स्मरण दिला रहे हैं कि आप **'गो द्विज हितकारी'** हैं **'असुरारी'** हैं, और देवताओं तथा पृथ्वी के पालनहार हैं। हम सबको असुर भयभीत कर रहे हैं, **'सो करउ अघारी चिंत हमारी'** कृपया पापों के नाश करने वाले आप हमारी सुधि लीजिये। इस प्रकार देखते हैं कि प्रथम नक्षत्र अश्विनी **धर्म पुरुषार्थ** से सम्बन्धित है, तो श्रीरामचरितमानस की प्रथम स्तुति में भी भगवान् से **धर्म की रक्षा** के लिये प्रार्थना की गयी है। यह भी अद्भुत साम्य है।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - २

कौसल्याजीकृत स्तुति (बालकाण्ड) - भरणी नक्षत्र

छं० - भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी।।
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता।।
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता।।
ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।।
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा।।

-दो० १९२ के अन्तर्भूत छन्द

अर्थ सहित व्याख्या -

'भए प्रगट कृपाला' - वो भगवान् जो कृपालु हैं, दीनों पर दया करने वाले हैं और कौशल्या का हित करने वाले हैं, वो

भगवान् प्रकट हुए। भगवान् तो सब जगह हैं ही लेकिन भक्त लोग जो दीन भाव से भगवान् की शरण हैं, उनके ऊपर कृपा करने के लिये प्रकट होकर उन्हें दर्शन देते हैं। कृपा करना तो भगवान् का स्वाभाविक गुण है और जो दीन (अहंकार रहित) होकर भगवान् की शरण आते हैं, उन्हें यह कृपा प्राप्त होती है परन्तु जो भगवान् से विमुख होकर संसार की ओर उन्मुख हैं; उन्हें भगवान् की कृपा कैसे प्राप्त हो?

श्री रामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि जैसे समुद्र पर हवा तो सभी के लिये चलती रहती है लेकिन जो अपनी नाव पर पाल लगाकर, पाल को सही दिशा में मोड़ते हैं, उन्हें मानो वायु की कृपा प्राप्त होती है, वे अपनी मंजिल पर पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार भगवान् तो सब पर कृपा की वर्षा करते रहते हैं; परन्तु व्यक्ति को स्वयं भी कुछ प्रयास, इस कृपा को प्राप्त करने के लिये करना पड़ता है। माने संसार की आसक्तियों को छोड़ कर अपने मन-बुद्धि को परमात्मा में लगाना पड़ता है।

कौशल्या जी का हित करने के लिये भगवान् उनके सम्मुख प्रकट हो गये। **'हरषित महतारी'** कौशल्या जी भगवान् को अपने सामने देखकर बहुत प्रसन्न हुईं परंतु साथ ही मुनियों के भी मन का हरण कर लेने वाले भगवान् विष्णु के रूप को देखकर आश्चर्यचकित भी हो गईं। उन्होंने सावधान होकर देखा कि **'लोचन अभिरामा'** भगवान् के बहुत सुन्दर नेत्र हैं और नेत्रों में उन्हें भगवान् का अनुग्रह दिखाई दिया। मेघ के समान श्याम रंग है और अपने आयुध - शंख, चक्र, गदा, पद्म को अपनी चारों भुजाओं में लिए हुए हैं।

भगवान् तीनों लोकों के स्वामी हैं। शंख बजा कर वे लोगों को सावधान करते हैं कि जागते रहो, अपने जीवन का

उद्देश्य स्मरण रखो। भगवान् के हाथ का पद्म स्मरण दिलाता है कि जो भगवान् की सेवा में रहेगा, वह संसार में रहते हुए भी कमल के समान निर्विकार, निर्लेप होकर रहेगा। ज्ञानी, भक्त का व्यक्तित्व कमल के पुष्प के समान सुगंधित होगा। परंतु जो लोग भगवान् की बात नहीं मानते, रनके ऊपर भगवान् का गदा चलता है और जो गदा रूपी आपदाओं के आने पर भी नहीं चेतते, उनके लिए भगवान् का चक्र है। इस प्रकार भगवान् के चारों आयुध भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता के सूचक हैं।

यहाँ पर कौशल्या जी के सामने भगवान् विष्णुरूप में इस प्रकार प्रकट हो गये जैसे आकाश में मेघ प्रकट हो जाये। आभूषण, पीताम्बर आदि धारण किये हुए हैं, वनमाला धारण किये हुए हैं। नेत्र बहुत सुन्दर, बड़े विशाल हैं और भगवान् शोभा के भी सिंधु हैं।

परमात्मा जो निर्गुण निराकार है, तो आनन्द सिंधु है; वही परमात्मा जब सगुण साकार रूप में अवतार लेता है, तो वही आनन्दघन बुद्धि के स्तर पर प्रेम बन जाता है। शरीर के स्तर पर सौन्दर्य भी आनन्द का ही रूप है। भगवान् **'खरारी'** हैं, माने खर-दूषण निशाचरों का विनाश करने वाले हैं। आध्यात्मिक रूप से खर से तात्पर्य है कठोरता तथा दूषण माने है दोष। जिसके हृदय में परमात्मा आ जाये उसकी वाणी की कठोरता तथा अंतःकरण के दोष, सब दूर हो जाते हैं।

कौशल्या माँ हाथ जोड़कर भगवान् से कहने लगीं कि भगवान् आप तो अनन्त हो, हम आपकी महिमा कैसे बोलें? कौशल्या जी ने भगवान् के मानवाकार रूप के साथ ही यह भी देखा (समझा) कि जो परमात्मा देशकालातीत परात्पर है, वही

हमारे सामने आकर इस रूप में प्रकट हो गया है। वे कहती हैं कि **'माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता'** आप माया और उसके तीनों गुणों से परे हो, आप इन्द्रियों की पहुँच से परे हो। मन-बुद्धि से आपको प्राप्त नहीं किया जा सकता, आप अहंकार रहित हो। सभी वेद-पुराणों ने आपकी ऐसी ही महिमा गायी है। **'करुणा सुख सागर'** आप करुणा के भंडार हो। सुख के भंडार हो, सब गुणों के भंडार हो। श्रुतियाँ और संतलोग इसी प्रकार भगवान् की महिमा गाते हैं। इस प्रकार से कौशल्या जी ने मानो उन्हें पहचान लिया कि श्रुतियों में वर्णित निर्गुण-निराकार परमात्मा ही साकार रूप में हमारे सामने भगवान् नारायण के रूप में प्रकट हुआ है।

वेद कहते हैं कि आपके रोम-रोम में अगणित ब्रह्माण्ड हैं और उन समस्त ब्रह्माण्डों की रचना आपकी माया ने की है और वह माया भी आपके आधीन है। अब आपकी महिमा को क्या कहा जाये कि आप कितने व्यापक हैं; कितने शक्तिशाली हैं? **'मम उर सो बासी यह उपहासी'** ऐसा महान परमात्मा हमारे उदर में वास करे यह तो बड़ी विचित्र और उपहास की सी बात है। तात्पर्य यह है कि परमात्मा आकाश के समान अन्दर और बाहर सर्वत्र विद्यमान है, इसलिये वह (अनन्त होकर) सर्वत्र विद्यमान होते हुए उदर में भी विद्यमान है। यह वेदान्त का सिद्धान्त तुलसी दास जी बड़े सहज ढंग से बोल जाते हैं।

कौशल्या जी कहती हैं कि इस उपहासवाली बात को सुन कर कि वह अनंत परमात्मा हमारे उदर में रहा, किसी की भी बुद्धि **'थिर न रहै'** अर्थात् स्थिर नहीं रह सकती। **लेकिन उनका अपना अनुभव है कि वे अनन्त परमात्मा को अन्दर-बाहर सर्वत्र**

व्याप्त देख रही हैं। कौशल्या जी के हृदय में यह ज्ञान उत्पन्न हुआ देखा, तो भगवान् मुस्कराये क्योंकि वे आगे बहुत से चरित्र करना चाहते थे। इसीलिये भगवान् ने मुस्कुराकर (माया करके) कौशल्या जी के हृदय में ब्रह्मज्ञान के स्थान पर पुत्र प्रेम उत्पन्न करा दिया। इसके लिये भगवान् ने माता को उनके पूर्व जन्म की तपस्या और वरदान की बात याद दिलाकर कहा कि अब समय आ गया है कि हम तुम्हारे यहाँ पुत्र रूप में आ रहे हैं।

भगवान् के समझाने पर कौशल्या जी की बुद्धि में भगवान् का जो **'ब्रह्माण्ड निकाया'** रूप समाया हुआ था, उससे उनका थोड़ा ध्यान हटा (मति डोली) और वे बोलीं कि जब माता-पुत्र का सम्बन्ध होना है, तो यह रूप छोड़ो और छोटे से पुत्र का रूप धारण करो। **'कीजै सिसुलीला'** और फिर बिल्कुल छोटे शिशुओं की लीला करो, जो हमको परम सुखमय लगे।

'सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा'-कौशल्या माता के आदेश देने पर देवताओं के स्वामी भगवान् ने शिशु रूप धारण करके रोना शुरू कर दिया। भगवान् सुजान हैं, वे जानते हैं कि हमें केवल बाललीलाएँ ही नहीं करनीं वरन् धर्म की रक्षा के लिए हमने अवतार लिया है। भगवान् की लीला का प्रारम्भ यहीं से हो जाता है - सबसे पहली रक्षा धर्म की भगवान् ने यह की कि माता की आज्ञा का पालन करके दिखा दिया। बालक की रोने की आवाज सारे महल में फैलने लगी और इस प्रकार भगवान् प्रकट हो गए।

तुलसीदास जी कहते हैं कि भगवान् के अवतरण की यह कथा जो लोग सुनेंगे-सुनायेंगे, वे संसार रूपी कुएँ (भवकूप) में नहीं पड़ेंगे वरन् उन्हें हरिपद प्राप्त हो जायेगा। जो बार-बार इसे

पढ़ेगा उसे धर्म की शिक्षा भी मिलती रहेगी और परमार्थ का चिंतन भी उसका होता रहेगा। जीव जब तक अज्ञानी है, तब तक वह भवकूप में पड़ा है लेकिन हरिपद प्राप्त करके भवकूप से उसकी मुक्ति है।

इसप्रकार तुलसीदास जी ने यहाँ पर बता दिया कि भगवान् के अवतार लेने की कथा का तात्पर्य क्या है एवं इस कथा को ठीक से समझने का फल क्या है?

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - अनुक्रम के हिसाब से यह मानस की दूसरी स्तुति है और नक्षत्र मण्डल के दूसरे नम्बर के नक्षत्र का नाम **'भरणी'** है, यह अनुक्रम की दृष्टि से साम्य हुआ।

२. नाम साम्य - नाम की दृष्टि से इस दूसरी स्तुति एवं दूसरे नक्षत्र में साम्य देखें, तो बालकाण्ड के दो० ३०-६ में कहा है **'राम कथा कलि पन्नग भरनी'** और मुख्य रामकथारूपी भरणी का आरंभ इस स्तुति से ही हुआ है; इसलिये यह स्तुति भरणी ही हुई। इसके अतिरिक्त 'भरणी घोषके ऋक्षे' यहाँ पर ऋक्ष = नक्षत्र, घोषक = घोषणा करने वाला, और इस स्तुति के प्रारम्भ में ही घोषणा है कि **'भए प्रगट कृपाला दीनदयाला'**।

३. आकार-रूप साम्य - भरणी नक्षत्र का आकार योनि के समान (∴) है, योनि माने जन्म का स्थान अथवा कारण और यह स्तुति भी अजन्मा के जन्म का कारण (माँ कौशल्याजी) ने की है - यह हो गया आकार में साम्य।

४. तारे संख्या साम्य - देखते हैं कि भरणी नक्षत्र में तीन तारे हैं और इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भी वेद, पुराण और संतों के

वचन रूपी (**'बेद पुरान भनंता', 'जेहि गावहिं श्रुति संता', रोम रोम प्रति वेद कहै'**) तीन तारे हैं। यह तारें संख्या में साम्य हुआ।

५. देवता साम्य – अब देवता की बात करें, तो इस नक्षत्र के देवता **यम** हैं। बारह आदित्यों में एक का नाम यम है। यम = काल **'यमो दण्डधरः कालः'** और मानस में भगवान् स्वयं बताते हैं कि **'कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता'** (उत्तरकाण्ड ४०-५), इस प्रकार पूरा देवता साम्य सिद्ध हुआ।

६. पुरुषार्थ साम्य – पुरुषार्थ की दृष्टि से देखें, तो भरणी नक्षत्र का सम्बन्ध **अर्थ** पुरुषार्थ से है, और इस स्तुति में कौशल्याजी कहती हैं 'सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता' वही भक्तों पर प्रेम करने वाले भगवान् लक्ष्मीपति माने समस्त सृष्टि की धन-सम्पत्ति (**अर्थ**) की स्वामिनी के पति; मेरे कल्याण के लिये प्रकट हुए हैं, यह अर्थ पुरुषार्थ से ही इस स्तुति का भी सम्बन्ध होने से, अर्थ पुरुषार्थ वाले भरणी नक्षत्र से इस स्तुति का साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - ३

अहल्याकृत स्तुति (बालकाण्ड) - कृत्तिका नक्षत्र

छं० - परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही।।
धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई।।
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई।।
मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भव मोचन इहइ लाभ संकर जाना।।
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना।।
जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी।।
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पति लोक अनंद भरी।।

दो० २११ के अन्तर्भूत छंद

अर्थ सहित व्याख्या-

यद्यपि भगवान् राम को मुनि पत्नी के सिर पर पैर लगाते हुए संकोच लग रहा था, परंतु विश्वामित्र जी के बार-बार यह

कहने से कि अहल्या उद्धार के सामने; ये संकोच महत्वहीन है - भगवान् राम ने शिला बनी अहल्या के सिर पर अपने चरण से स्पर्श करा दिया।

'परसत पद पावन सोक नसावन'- भगवान् के चरण पवित्र हैं और शोक के नष्ट करने वाले हैं इसलिये जैसे ही उनका स्पर्श हुआ, तो अहल्या का पत्थर रूप समाप्त हो गया और तपस्वी रूप धारण किये हुए (तपपुंज) अहल्या प्रकट हो गयी। यह सब प्रसंग त्रेतायुग में घटित तो हुआ परंतु इसे अपने आंतरिक जगत् के आध्यात्मिक सत्य के रूप मे देखें। अहल्या हमारी बुद्धि है जैसे-जैसे यह परमात्मा से विमुख होती है, तो इसमें तमोगुण बढ़ कर, पत्थर जैसी जड़ता आती जाती है और परमात्मा का स्मरण करने से, परमात्मा के संस्पर्श से, बुद्धि में निर्मलता, चेतनता आती जाती है।

गुरुदेव कहते है कि परमात्मा तो अपनी सत्ता से विद्यमान है ही, परंतु संसार में लोगों को परमात्मा शास्त्र के द्वारा उपलब्ध है। माने परमात्मा का आधार (जिस पर वह खड़ा है;वे चरण) शास्त्र हैं, जिनसे कि परमात्मा का ज्ञान होता है।

शास्त्र के द्वारा ज्ञान होता है कि मन-बुद्धि की वृत्तियाँ तो विकारी हैं और मैं इन सब का साक्षी हूँ। इस प्रकार परमात्मा पहले साक्षी के रूप में ही पकड़ में आता है। इसलिये ये साक्षी भी एक प्रकार से परमात्मा के चरण हैं।

भगवान् के चरण **'सोक नसावन'** हैं, तो हम देखते हैं कि शास्त्रों का अध्ययन और साक्षी का चिंतन दोनों ही शोक को नष्ट करने वाले हैं। परमात्मा के स्पर्श से बुद्धि सत्वगुणी बन जाती है और सत्वगुणी बुद्धि को जहाँ शास्त्र प्रमाण प्राप्त हुआ, वह

परमात्मा अपने ही स्वरूप में प्रकट होता है - यही उसका परमात्मा को देखना है।

यहाँ पर अहल्या ने भक्तों को सुख देने वाले भगवान् राम को देखा तो उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। भगवान् को देखकर वह गद्‌गद् हो गयी, इतनी हर्ष विह्वल हो गई कि मुख से वचन नहीं निकलते। वह अपने को सौभाग्यशालिनी (अतिसय बड़भागी) मान रही है कि उसे भगवान् के दर्शन प्राप्त हो रहे हैं। अहल्या ने भगवान् के चरणों में प्रणाम किया और उसके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे। **'धीरजु मन कीन्हा'**- उसने फिर अपने मन के संवेगों पर नियन्त्रण प्राप्त करके धैर्य धारण किया और भगवान् को परब्रह्म परमात्मा करके समझ लिया, फिर भगवान् राम की कृपा से उसको भक्ति प्राप्त हो गयी।

आध्यात्मिक रूप से देखें, तो पहले तो बुद्धि अपने हृदय में साक्षी को (आत्मा को) जानती है। परमात्मा तो आनन्दस्वरूप है, वह जब अनुभव में आया तो उससे सहज प्रेम भी हो जाता है और वह व्यक्ति जान जाता है कि हमें इसी के प्रति समर्पित रहना चाहिए। इस भाव का आना ही भक्ति का आना है।

अहल्या ने बड़ी सरलता से सद्‌विचार से भगवान् से प्रार्थना शुरु की, वह कहती है कि हे ज्ञान से जानने योग्य रघुनाथ जी! आपकी जय हो। मैं तो सहज ही अपवित्र स्त्री हूँ और आप जगत् को पवित्र करने वाले, भक्तों को सुखी करने वाले और रावण के शत्रु हैं। रावण का शाब्दिक अर्थ है कि जो रुलावे, और हमारे भीतर मोह रूपी रावण बैठा हमें रुलाता है और इस मोह के शत्रु (इसे नष्ट करने वाले) केवल भगवान् राम हैं। परमात्मा हृदय में प्रकट हुआ, तो हमारा मोह नष्ट हो गया, दुःख समाप्त हो गये।

आपके कमल के जैसे नेत्र हैं और आप जन्म-मृत्यु (भव) के भय से मुक्त करने वाले हैं। हम आपकी शरण में हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये (पाहि पाहि)। **'मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा'** अहल्या कहती है कि आज हमारी समझ में आया कि गौतम मुनि ने हमें जो श्राप दिया, वह बहुत ही अच्छा किया, क्योंकि उसी श्राप के कारण हमने संसार के चक्र से मुक्त कर देने वाले श्री हरि के सुन्दर स्वरूप को जी भरकर अपने नेत्रों के सामने साक्षात् देखा। भगवान् शंकर जी तक इसी लाभ को सबसे बड़ा लाभ मानते हैं।

'बिनती प्रभु मोरी'- हे प्रभु! मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिए, केवल **'पद कमल परागा रस अनुरागा'** मेरी मन रूपी मधुमक्खी आपके चरण कमलों की रज रूपी पराग के रस (मकरन्द) का ही सदा पान करती रहे।

मकरन्द का तात्पर्य है परमात्मा का ज्ञान, माने परमात्मा के दर्शन ही मकरन्द हैं। **'अद्वैत मकरन्द'** नामक पुस्तक में कहा गया है कि **कमल और उसका पराग तो कोई भी प्राप्त कर सकता है, परन्तु उस पराग से शहद (मकरन्द) हर किसी को प्राप्त नही होता। केवल मधुमक्खी ही यह कार्य कर सकती है। मधुमक्खी के समान ही वैराग्यवान, विवेकवान व्यक्ति हैं, जो शास्त्रों का अध्ययन करके, उसका मकरन्द रूप जो परब्रह्म परमात्मा है, उस तक पहुँचते हैं।**

भगवान् के चरणों से ही परम पवित्र गंगाजी निकलीं और शंकर जी ने उन्हें अपने शीश पर धारण किया। भौतिक रूप में तो गंगाजी गोमुख से समुद्र की ओर जाती हैं लेकिन वेदान्त में परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान ही गंगा है।

भगवान् के चरणों से गंगा जी निकलीं, तो ब्रह्मा जी के कमंडल में आ गईं। माने ब्रह्मा जी के मुख से चारों वेद निकले तो इन वेदों के ज्ञान के रूप में आ गईं। फिर शास्त्रों का अध्ययन करने वाले गुरुओं की बुद्धि (मस्तक) में वह ज्ञान आ गया। शंकर जी आदि गुरु हैं, माने शंकर जी की बुद्धि (जटाओं) में गंगा जी आ गईं फिर शंकर जी ने गंगा जी को जटाओं से आगे भी बहने दिया। माने अन्य लोगों को यह ज्ञान दिया जैसे कि पार्वती जी को यह कथा सुनाई, अगस्त्य ऋषि को ज्ञान-भक्ति की बात बताई। इस प्रकार यह ज्ञान-भक्ति, क्रम से एक से दूसरे, तीसरे में नदी की तरह प्रवाहित होता है - इस प्रवाह को गंगा नदी कहते है। गंगा जी कभी सूखती नहीं, निरंतर प्रवाहित होती हैं - इसी प्रकार परमात्मा नित्य है।

'सोई पद पंकज'- अहल्या कहती हैं कि वे ही चरण कमल जिनकी ब्रह्माजी भी सदा पूजा किया करते हैं, कृपानिधान भगवान् ने हमारे शीश के ऊपर रख दिये, ये बड़ी कृपा हुई। इस प्रकार बार-बार प्रार्थना करती हुई गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या भगवान् के चरणों में गिरी और फिर उसका शरीर छूट गया। वह उस लोक को चली गयी, जहाँ पर गौतम ऋषि गये थे। गौतम ऋषि अपने ज्ञान के बल पर सर्वत्र व्याप्त परब्रह्म परमात्मा में ही स्थित हो गये थे - इसे ही ब्रह्मगति कहते हैं।

कथा में तो अहल्या को ब्रह्मगति प्राप्त हुई लेकिन हमने यह भी देखा कि अहल्या बुद्धि का प्रतीक है। जब ये बुद्धि जान जाती है कि साक्षी ही अपना स्वरूप (आत्मा, परमात्मा) है, तो बुद्धि शांत हो जाती है। बुद्धिवृत्ति शांत होकर परमात्मा में लीन हो जाती है। बुद्धि का परमात्मा में लीन होना ही परमात्मा का प्राप्त होना

है। इस प्रकार **'सिधारी गौतम नारी'** माने बुद्धि निर्गुण निराकार (ब्रह्म) भाव में स्थित हो गई। उसने जो भक्ति का वरदान माँगा था, वह प्राप्त हो गया और वह आनन्दित होकर **'गै पति लोक'** माने परमात्म भाव में स्थित हो गई।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - श्रीरामचरितमानस में यह तीसरी स्तुति है, और आकाश स्थित नक्षत्र मण्डल में तीसरे नम्बर का नक्षत्र **कृत्तिका** है, यह तो अनुक्रम के हिसाब से साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - नाम की दृष्टि से देखें, तो कृत्तिका माने काट-छाट डालने वाली, और इस स्तुति ने अहल्या का पाप, शाप, शोक, भय, भव रोग इन सबको काट डाला है। अतः यह स्तुति कृत्तिका है, माने यह नाम की दृष्टि से साम्य है।

३. आकार-रूप साम्य - आकार की दृष्टि से साम्य देखें, तो कृत्तिका नक्षत्र का आकार घोड़े के खुर (टाप) के समान है, और हरिचरण = घोड़े की टाप है ही।

४. तारे संख्या साम्य - नक्षत्र के तारों की संख्या के हिसाब से देखें, तो पं रघुनाथ शास्त्रीजी ने नक्षत्र चित्रपट में, कृत्तिका नक्षत्र में सात तारे दिखाये हैं और स्तुतिरूपी नक्षत्र में क्रमशः रघुनायक, प्रभु, रघुपति, रघुराई, हरिभवमोचन, कृपालहरि और हरिचरण रूपी, ये सात तारे हैं।

५. देवता साम्य - कृत्तिका नक्षत्र के देवता अग्नि हैं और इस स्तुति का मूल कारण गौतम ऋषि की क्रोधाग्नि ही है। शाप के पश्चात् अहल्या की प्रार्थना से द्रवित होकर उन्होंने उससे

कहा था कि भगवान् राम की भक्तिपूर्वक उपासना करो, तो भगवान् ही स्वयं आकर तुम्हें इस शाप से मुक्ति दिलायेंगे।

६. पुरुषार्थ साम्य - अब पुरुषार्थ की दृष्टि से देखें, तो कृत्तिका **काम नक्षत्र** है और अहल्या को, भगवान् की अनन्य भक्ति की प्राप्तिरूपी, अपनी अतिप्रिय मनोकामना, इस स्तुति में पूर्ण हुई है। इसलिये यह **काम** पुरुषार्थ से सम्बन्धित स्तुति है।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - ४

परशुरामजीकृत स्तुति (बालकाण्ड) - रोहिणी नक्षत्र

जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू।।
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी।।
बिनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर।।
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छबि कोटि अनंगा।।
करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा।।
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता।।
कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू।।

- दो० २८५ के अन्तर्भूत चौ०

अर्थ सहित व्याख्या -

परशुराम जी को इतनी देर में भगवान् का जैसा अनुभव हुआ, वैसी ही प्रार्थना वे भगवान् से करते हैं। **'जय रघुबंस बनज बन भानू'** सूर्य वंश मानो कमलों का वन है, उस कमल वन में आप सूर्य के समान उदय हुए। अर्थात् आप सूर्य वंश को आनन्दित और विकसित करने वाले हैं और राक्षसों के कुल रूपी घोर जंगल को जलाने वाली अग्नि के समान हैं।

हे भगवान्! आपकी जय हो। भगवान् राम ने इन्हीं तीनों (देवता, ब्राह्मण और गाय) की रक्षा के लिये अवतार लिया था। गाय धर्म का प्रतीक है, देवताओं को देवत्व धर्म के ही बल पर प्राप्त होता है, विप्र लोग धर्म का प्रचार करते हैं। इस प्रकार इन तीनों का सम्बन्ध धर्म से ही है और इस प्रकार भगवान् ने धर्म की रक्षा के लिये अवतार लिया है। हे भगवान् राम! आप जीव का

मद, मोह, क्रोध, भ्रम के हरण करने वाले हो (स्वयं परशुराम जी के मद, मोह, क्रोध, भ्रम दूर हो गये हैं)।

भगवान् में विनय, शील, कृपा आदि गुण कूट-कूट कर भरे हुए हैं। परशुराम जी ने स्वयं देख लिया कि हमने इतने कटु वचन बोले लेकिन भगवान् राम ने अपनी विनम्रता नहीं छोड़ी। इसी में यह भी संकेत है कि जो परमात्मा का स्मरण करेगा, उसके हृदय में परमात्मा इन गुणों के रूप में आकर प्रकट होगा, क्योंकि ये गुण परमात्मा से अभिन्न हैं।

परशुराम जी कहते हैं कि हे भगवान्! आपकी जय हो। आप बोलने में बड़े ही कुशल हैं, आप अपने सेवकों को सुख देने वाले हो, सिर से लेकर पैर तक, बहुत ही सुन्दर स्वरूप आपका है और आपकी सुन्दरता तो करोड़ों कामदेवों (अनंगा) की सुन्दरता के जैसी है। मैं अपने एक मुख से आपकी क्या प्रशंसा करूँ? तात्पर्य है कि जब हजारों मुख से शेष नाग आपकी प्रशंसा करते रहते हैं, तब भी पूरा वर्णन नहीं कर पाते, तो भला हम अपने एक मुख से आपकी महिमा का गान करने में कैसे सफल हो सकते हैं? हे भगवान् राम! आप भगवान् शंकर जी के मन रूपी मानसरोवर में विचरण करने वाले हंस हो।

अभी तक परशुराम जी भगवान् राम को अपने गुरु शंकर भगवान् का शत्रु समझ रहे थे। अब उन्हें समझ में आया कि हमारे गुरु शंकर जी भी अपने हृदय में इन्हीं भगवान् राम का स्मरण करते रहते हैं। अब परशुराम जी कहते हैं कि हमें ज्ञान नहीं था इसीलिये अज्ञानतावश हमने बहुत सी अनुचित बातें कहीं परन्तु आप तो क्षमा मन्दिर हैं, इसीलिये कृपा करके आप दोनों भाई हमें क्षमा करें।

परशुराम जी बार-बार रघुकुल केतु की जय हो! रघुबीर की जय हो! भगवान् राम की जय हो! - इस प्रकार बोलते हुए तपस्या करने के लिये वन की ओर चले गये। यहाँ पर देखते हैं कि परशुराम जी भगवान् की जय-जय कार तो बहुत करते हैं परन्तु प्रणाम नहीं करते, क्योंकि उन्हें अब अपने विप्रत्व का बोध हो गया है और भगवान् राम इस समय क्षत्रिय रूप में हैं।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - श्रीरामचरितमानस में यह चौथी स्तुति है और आकाश स्थित नक्षत्रमण्डल का चौथा नक्षत्र रोहिणी है, यह अनुक्रम की दृष्टि से इस स्तुति का रोहिणी नक्षत्र से साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - रोहिणी का अर्थ है, जो बहुत ऊँचे चढ़ जाए; और श्रीरामचरितमानस में इस चौथी स्तुति के द्वारा भगवान् श्रीराम की कीर्ति बहुत ऊँचे चढ़ी। इसको इस प्रकार समझ सकते हैं कि धनुषभंग के बाद, वहाँ उपस्थित कुछ दुष्ट (भगवान् के स्वरूप से अनजान) राजालोग लालच में अन्धे होकर भगवान् को युद्ध में हराने की कल्पना करने लगे थे। उन राजाओं ने जब महाबलशाली परशुरामजी को भी भगवान् श्रीराम से क्षमा माँगते और उनकी यह स्तुति करते देखा, तो उन्हें भगवान् की अपार महिमा का परिचय मिला, और तब **'जहँ तहँ कायर गवँहिं पराने'** - वे कायर चुपके से जहाँ-तहाँ भाग गये। माने भगवान् की कीर्ति पताका ऊँचे चढ़ी, और इस प्रकार से इस स्तुति का रोहिणी नाम से साम्य सिद्ध होता है।

३. आकार-रूप साम्य - रोहिणी नक्षत्र का आकार रथ के समान है। देखते हैं कि इस स्तुति में धर्मरथ के सम्पूर्ण अंगों का

प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष वर्णन है। जैसे कि स्तुति में भगवान् को शील, केतू, भानु, सुरधेनुहित, छमामंदिर, बिप्रहित, गुण सागर इत्यादि शब्दों से सम्बोधित किया गया है, तो उधर इसी प्रकार से सत्य सील, ध्वजा पताका, बल, परहित घोरे, छमा कृपा, विप्रगुरु पूजा, शम, यम, नियम आदि गुणों को धर्म रथ के अंगों के रूप में गिनाया गया है। इस प्रकार से यह रोहिणी नक्षत्र एवं इस स्तुति के मध्य आकार में साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य – रोहिणी नक्षत्र में पाँच तारे हैं जिनमें एक अस्पष्ट दीखता है। इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में, परशुरामजी का मोह, भ्रम, क्रोध, मद और अविनय, ये पाँच तारे हैं जिनमें अविनय तारा अस्पष्ट है।

५. देवता साम्य – इस नक्षत्र का देवता 'धाता (प्रजापति)' है। यह स्तुति की जाने का संयोग (धनुष भंग) यदि न जुटता, तो अवतार कार्य ही न होता, श्रीराम चरित्र यहीं समाप्त हो जाता। इसलिये यह स्तुति अवतार कार्य, श्रीराम चरित्र का धाता-विधाता ही है। यह देवता की दृष्टि से साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य – चौथा नक्षत्र रोहिणी **मोक्ष** नक्षत्र है। और इस चौथी स्तुति में परशुरामजी पहचान गये हैं कि उनके नेत्रों के सम्मुख जो श्रीराम खड़े हैं, वे स्वयं भगवान् ही हैं जो सगुण, साकार रूप में अवतरित हुए हैं। भगवान् के दर्शन का फल है कि **'जीव पाव निज सहज सरूपा'** और अपने सहज स्वरूप की प्राप्ति हो जाना ही **मुक्ति** है, इसलिये यह मोक्ष-स्तुति-नक्षत्र है। यह पुरुषार्थ की दृष्टि से साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - ५

सुनयनाजीकृत स्तुति (बालकाण्ड) - मृगशीर्ष नक्षत्र

छं०- करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ बिदित गति सब की अहै।।
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी।।

सो०- तुम्ह परिपूरन काम जान सिरोमनि भावप्रिय।
जन गुन गाहक राम दोष दलन करुनायतन।।३३६।।

अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी।।

अर्थ सहित व्याख्या -

सीता जी को भगवान् श्री राम जी को सौंपकर फिर सुनयना जी बड़ा धैर्य धारण करके, बड़ी गंभीरता के साथ भगवान् श्री राम जी के आगे दोनों हाथ जोड़कर विनती करते हुए कहती हैं कि हम तुम्हारी बलिहारी जाती हैं, तुम स्वयं बुद्धिमान हो और हमारे सबके ह्रदय की गति भी तुम जानने वाले हो। यह जानकी पूरे परिवार को, सारे जनकपुरवासियों को, मुझको और राजा जनकजी को अर्थात् हम सभी को प्राणों के समान प्रिय है। हे तुलसी के स्वामी! इनके शील और स्नेह को इनके सद्‌गुणों को देखना और इनको अपनी दासी समझ कर मानना। माता का यह उपदेश परिवार के कल्याण के लिये है।

अब तुलसीदास जी भगवान् की महिमा का गुणगान इस दोहे में करते हैं, इसलिये यह स्मरणीय दोहा है **'तुम्ह परिपूरन**

काम जान सिरोमनि भावप्रिय' - हे भगवान् राम! आप तो समस्त कामनाओं से परितृप्त हो, आपको क्या दिया जाये? जो कुछ किया जाये, वो हमारी तरफ से एक उपक्रम मात्र है। आप ज्ञान शिरोमणि हैं, माने आप सबकुछ (सबके दोष-दुर्गुण) जानने वाले हो लेकिन प्रेम भाव आपको प्रिय है। इसी कारण से सबके ऊपर आप कृपा करने वाले हो। हे राम! तुम भक्तों के गुणों को ही देखने वाले हो, उनके दोषों को नष्ट करने वाले हो और करुणानिधान हो।

भक्त को भगवान् के ये गुण ध्यान रखने चाहिएँ। जो ऐसे भगवान् का स्मरण करेगा। उसमें भी भगवान् के गुण आयेंगे। उसे भी भगवत्ता प्राप्त होगी। भक्त का और ज्ञानी का लक्षण है कि व्यक्तियों के गुण ही गुण देखो, और संसारी लोगों का इससे विपरीत लक्षण होता है; वे दोष ही देखते है। हमें भगवान् के गुणों का इतना चिंतन करना चाहिए कि ऐसा ही स्वभाव अपना भी बन जाए।

भगवान् राम की महिमा का गुणगान करके सुनयना जी ने फिर भगवान् राम के चरण पकड़ लिये। **'प्रेम पंक जनु गिरा समानी'** ऐसा कहते-कहते उनकी वाणी इस प्रकार से रुक गयी जैसे कि कोई रास्ते में जा रहा हो, तो दलदल में पैर फँस जाये और वह आगे न बढ़ पाये। इसी प्रकार से रानी के हृदय में प्रेम इतना उमड़ा, गले में प्रेम की भावना आकर ऐसी फँसी कि प्रेम रूपी दलदल में मानो रानी की वाणी धँस गयी, अब उनसे बोला नहीं जाता। वहाँ पर करुण रस प्रधान हो गया।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - श्रीरामचरितमानस में यह पाँचवीं स्तुति

है और आकाश स्थित नक्षत्र मण्डल में पाँचवें नम्बर का नक्षत्र **मृगशीर्ष** है, यह अनुक्रम के हिसाब से इस स्तुति का नक्षत्र से साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - पाँचवें नक्षत्र का नाम मृगशीर्ष है, माने हिरन का मुख। देखते हैं कि यह स्तुति सुनयनाजी ने की है, वे स्वयं मृगनेत्रमुखी हैं, उनकी सब सखियाँ 'बिधुबदनीं सब सब मृगलोचनि' हैं। इस प्रकार यह नाम की दृष्टि से साम्य हो गया।

३. आकार-रूप साम्य - इस नक्षत्र में तीनों तारों का मिलकर मृगमुख के जैसा आकार दिखाई देता है। इधर इस स्तुति को करते-करते अंत में सुनयनाजी का मुख, मृगमुख के समान वाणी विहीन हो गया है। २८ स्तुतियों में से यह एक ही स्तुति ऐसी है कि जिसमें स्तुतिकर्ता का मुख अचानक बंद हुआ। इस प्रकार से यह आकार की दृष्टि से साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य - मृगशीर्ष नक्षत्र में तीन तारे हैं। और इस पाँचवीं स्तुतिरूपी नक्षत्र में 'सिय रामहि समरपी', 'कर जोरि बिनय' और 'चरन गहि रही' - ये तीन तारे हैं, तो यह तारों की संख्या के अनुसार साम्य हो गया।

५. देवता साम्य - इस नक्षत्र का देवता चन्द्रमा है और यह सर्वविदित है कि चन्द्रमा का प्रकाश स्वयं का प्रकाश नहीं है,, वरन् सूर्य का तेजपूर्ण प्रकाश ही चन्द्रमा के प्रकाश के रूप में प्रतिबिम्बित होकर पृथ्वी तक आता है। इसी प्रकार भगवान् श्रीराम 'सच्चिदानन्द दिनेसा' सूर्यरूप हैं, तो उनकी 'मोरि यह माया' उनकी प्रतिच्छाया सीताजी, चन्द्रमारूपी हैं।

देखते हैं कि इस स्तुति के आरम्भ में सुनयनाजी 'प्रानप्रिय सिय' कहते हुए श्रीसीताजी के प्रति वात्सल्य भाव से परिपूरित

हैं, परन्तु स्तुति के अंत तक पहुँचते-पहुँचते उनका यही वात्सल्य भाव भगवान् राम के प्रति प्रगाढ़ भक्तिभाव के रूप में परिवर्तित हो गया और वे भावविह्वल हो गयी हैं। तात्पर्य यह है कि प्रतिबिम्ब के द्वारा बिम्ब तक पहुँचना ही आध्यात्मिक विकास है। यहाँ पर इस स्तुति में सुनयनाजी चन्द्रमारूपी श्रीसीताप्रेम के सहारे, सूर्यरूपी भगवान् श्रीराम की भक्ति पा गयी हैं। यह इस नक्षत्र के देवता चन्द्रमा और इस स्तुति के मध्य साम्य हो गया।

६. **पुरुषार्थ साम्य** - मृगशीर्ष नक्षत्र का सम्बन्ध **मोक्ष** पुरुषार्थ से है। रानी सुनयनाजी ने अपनी ममता (प्रानप्रिय सीताजी) को पूर्णपरमात्मा के चरणों में समर्पित कर दिया है। माने उनके ह्रदय में संसार की आसक्ति नहीं है, उनकी समस्त इन्द्रियाँ परमात्मा में समाहित हो गयी हैं। परमात्मा से यह अनन्य प्रेम ही तो **मुक्ति** है। इसलिये यह मोक्ष-स्तुति-नक्षत्र हुआ।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - ६

श्रीजनकजीकृत स्तुति, बालकाण्ड - (आर्द्रा नक्षत्र)

जोरि पंकरुह पानि सुहाए । बोले बचन प्रेम जनु जाए।।
राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा।।
करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी।।
ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी।।
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी।।
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई।।

दो० - नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल।।३४१।।

सबहिं भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई।।
होहिं सहस दस सारस सेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा।।
मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा।।
मैं कछु कहउँ एक बल मोरें। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें।।
बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि भोरें।।

अर्थ सहित व्याख्या -

बारात की विदाई की घड़ी में जनक जी चारों भाइयों के पास गये और उन्हें हृदय से लगाया। उन्होंने देखा कि चारों भाई रूप निधान, सील निधान और गुण निधान हैं तथा प्रेम परिपूर्ण हैं। **'जोरि पंकरुह पानि सुहाए'**- जनक जी अपने कर कमलों को जोड़कर अपने हृदय के प्रेम में डूबी हुई वाणी से बोलते हैं। यहाँ

पर ज्ञात होता है कि व्यक्ति के मुख से वैसे ही वचन निकलते हैं जैसे कि भाव उसके हृदय में होते हैं। जनक जी के हृदय में चारों भाइयों का प्रेम समाया हुआ था, तो उसी प्रेम से भरी हुई वाणी भी उनके मुख से निकली। वे अब भगवान् राम की तरफ सम्बोधन करके बताते हैं कि भगवान् राम जी कैसे हैं? जनक जी भगवान् राम की महिमा का गान करते हुए उनकी स्तुति गाते हैं।

स्तुतियों में वर्णित परमात्मा के गुणों का स्मरण जब मन-बुद्धि में होगा, तो मन शुद्ध होगा, निर्विकार होगा; अच्छे संस्कार बनेंगे। यहाँ पर जनक जी स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे भगवान् राम! हम आपकी प्रशंसा किस प्रकार करें? आप तो ऐसे महान् हो कि मुनियों और भगवान् शंकर जी के हृदय रूपी मान सरोवर में हंसों के समान वास करते हो। भगवान् तो सर्वव्यापी हैं, इसलिये मुनियों के हृदय में वास करने का अर्थ हुआ कि और लोगों के हृदय में भगवान् होते हुए भी भगवान् की माया (मानसिक विकारों के रूप में) ही व्यक्त हो रही है और मुनियों के हृदय निर्विकार हैं इसलिये परमात्मा गुण, शक्ति, ज्ञान, भक्ति के रूप में व्यक्त हो रहा है।

'करहिं जोग जोगी जेहि लागी'- कुछ ऐसे लोग हैं जिनके हृदय में परमात्मा प्रकट नहीं है और वे यह चाहते हैं कि परमात्मा हमारे हृदय में आवे। उसके लिये ये लोग, योगसाधना करते हैं। परमात्मा को प्राप्त करने की साधना के लिये इन योगी लोगों को क्रोध, आसक्ति, मेरा पन, घमंड (मद) छोड़ना पड़ता है। ये मद ज्ञान का, धन का, पद का, शारीरिक बल, परिवार आदि इनमें से किसी का भी हो सकता है, परन्तु ज्ञानी लोगों को दिखाई देता है कि जगत् स्वप्न के समान है! स्वप्न में कुछ भी प्राप्त हो जाये, तो उसका मद क्या होना है? और भक्तों की बात ऐसी है कि उनका

तो स्वभाव ही ऐसा हो जाता है कि उन्हें मद नहीं होता। लेकिन मद, क्रोध आदि मानसिक विकार स्वयं नहीं छूटते, इन्हें छोड़ने के लिये योग साधनाएँ करनी पड़ती हैं - जैसे कर्म योग, भक्ति योग, ध्यान योग आदि।

यदि कोई व्यक्ति भक्ति साधना तो बहुत करता है लेकिन उसका मोह, क्रोध वैसे ही बना है, तो इसके माने हैं कि उसकी भक्ति खोखली है। उसे भक्ति प्राप्त करने के साधन जैसे नाम जप, ध्यान, पूजा आदि खूब करने चाहिएँ। जब साधना करते-करते ये सारे मानसिक विकार दूर हो जायेंगे, तो परमात्मा हृदय में प्रकट हो जायेगा। जीवन आनन्दमय बन जायेगा।

योगी लोग जिस परमात्मा की प्राप्ति का प्रयास करते हैं, उस परमात्मा के लक्षण यहाँ पर जनक जी बताते हैं। **'ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी'** जनक जी भगवान् राम को सम्बोधित करते हुए ही कहते हैं कि आप ब्रह्मस्वरूप हो, व्यापक हो, अलख (जो दिखाई न दे) हो। लेकिन भगवान् राम तो दिखाई दे रहे हैं, इस बात को आगे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आप चेतन स्वरूप हो, आनन्द स्वरूप हो, निर्गुण हो, गुणराशि हो। अर्थात् निर्गुण परमात्मा में सत्व, रजस, तमस कोई गुण नहीं हैं। लेकिन वही परमात्मा सगुण-साकार हो गया जैसे कि आप भगवान् राम हैं, तो जितने भी सद्गुण हैं, वे सब आपमें वास करते हैं। और जिसके भी हृदय में सद्गुण हैं, तो परमात्मा उसके हृदय में है - अन्यथा माया भरी है।

मन वाणी जिस परमात्मा को जान नहीं सकते ऐसे परमात्मा आप हो, बुद्धि भी तर्क के द्वारा उसका अनुमान नहीं लगा सकती। अर्थात् वह परमात्मा न हमारे मन बुद्धि को उपलब्ध है और न इन्द्रियों को उपलब्ध है।

'महिमा निगमु नेति कहि कहई'- वेद भी उसकी महिमा नहीं कह पाये तो यही कहते हैं कि परमात्मा इतना ही नहीं है, ऐसा नहीं है। माने वेद कहते हैं कि सारा स्थूल ब्रह्माण्ड परमात्मा की रचना है लेकिन यह ब्रह्माण्ड परमात्मा नहीं है(नेति)। आगे वेद बोले कि स्वर्ग आदि सूक्ष्म लोक परमात्मा के ही रचे हुए हैं और उसी के रूप हैं, लेकिन ये सारा सूक्ष्म जगत् परमात्मा नहीं है (नेति)। सारी स्थूल, सूक्ष्म सृष्टि मायामय है और परमात्मा इन सबका अधिष्ठान सबके मूल में विद्यमान है। **'जो तिहुँ काल एकरस रहई'** परमात्मा तो सदा तीनों कालों में एक रस रहता है और ये स्थूल और सूक्ष्म जगत् तो कभी एक रस रह ही नहीं सकते, इसलिये ये जगत् परमात्मा नहीं है (नेति)।

एक रस माने एक सा - जैसा है, वैसा रहे। परमात्मा सत स्वरूप है, तो सदा सत स्वरूप रहेगा, परमात्मा चेतन स्वरूप है, तो सदा चेतन स्वरूप रहेगा और परमात्मा आनन्द स्वरूप है, तो सदा आनन्दस्वरूप रहेगा।

एक सूत्र है कि परमात्मा के आनन्द का अनुभव करना है, तो अपनी बुद्धि को व्यापक बनाओ। बुद्धि व्यापक होती जायेगी तब वैयक्तिक अहंकार नष्ट होगा और परमात्मा का आनन्द हम अनुभव करने लगेंगे। योग साधना करते हुए अपने मन-बुद्धि को सूक्ष्म बनाते हुए बुद्धि की बुद्धिता समाप्त होकर वह परमात्मामय हो जायेगी और मन-बुद्धि पीछे रह जायेंगे। कल्पना करो कि एक तरंग व्यापक होती-होती पूरे समुद्र के ऊपर फैल जाये, तो वह जल रूप ही हो जायेगी। इसी सिद्धान्त के अनुसार मन-बुद्धि तो तभी तक हैं जब तक सीमित हैं, बुद्धि जहाँ अनन्त हुई, तो वह परमात्मा ही हो गयी।

जनकजी कहते हैं कि समस्त सुखों का मूल जो ऐसा परमात्मा है, वही परमात्मा अवतार लेकर सगुण साकार रूप में मेरे नेत्रों का विषय बन गया है। हमारे सभी धर्म ग्रन्थों में परमात्मा तो एक ही है परन्तु उसके तीन रूप हैं - १. निर्गुण-निराकार अर्थात् जो बुद्धि से भी परे है। २. सगुण-निराकार जो बुद्धि गम्य है तथा ३. सगुण-साकार जो दिखाई देता है। परमात्मा अपने नित्य रूप में निर्गुण-निराकार ही है। वही अपनी माया शक्ति से सगुण भी हो गया और फिर माया की ही और शक्ति से भगवान् राम और भगवान् कृष्ण जैसा सगुण-साकार रूप भी धारण कर लिया। सगुण-साकार रूप सदा नहीं रहता और निर्गुण-निराकार रूप में वो सदा विद्यमान रहेगा।

यहाँ पर जनक जी को यही सबसे बड़ी महिमा दिखाई दे रही है कि परमात्मा हमारी आँखों से दीख गया। **'सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल'** संसार में जीव को सब प्रकार के लाभ तभी हैं, यदि ईश्वर अनुकूल है। माने भौतिक लाभ भी हैं और आंतरिक लाभ भी हैं। मन-बुद्धि शुद्ध, निर्विकार होते हैं, परमात्मा हृदय में प्रकट भी होता है। इसलिये जीव को ईश्वर को अनुकूल बनाने के लिये साधना करनी चाहिए, जिससे मानसिक विकार नष्ट हों, तब उसे सारे सुख हो गये, कहीं दुःख नहीं। अर्थात् जीवन का आनन्द, सफलता और पूर्णता केवल परमात्मा में है।

जनक जी कहते हैं कि आपने सब प्रकार से हमें बड़ाई प्रदान की और अपना भक्त (निज जन) जानकर हमें अपना लिया। जनक जी ने पहले जिस सिद्धान्त का उल्लेख किया था कि **'ईश्वर के अनुकूल होने पर जीव को भौतिक और पारमार्थिक सब प्रकार से लाभ ही लाभ है'** अब वे इसका उदाहरण देते हैं कि हम

स्वयं इस बात के प्रमाण हैं कि भगवान् आपने हमें अपना लिया, तो हम सब प्रकार से बड़े हो गये।

जीव संसार में लिप्त है, तो वह निम्नकोटि का है। लेकिन जहाँ जीव परमात्मा के अभिमुख होने लगा, तो उसे उच्च स्तर प्राप्त होते जाते हैं और परमात्मा की कृपा प्राप्त हुई तथा परमात्मा ने उसे अपना कर अपने समान बना लिया, तो वो भी महान हो गया। इसलिये जीवन की महानता परमात्मा की भक्ति में, परमात्मा के ज्ञान में ही है।

हमें शास्त्र का मर्म भी समझना चाहिए। परमात्मा के अपनाने से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के मानसिक विकार (काम, क्रोध, लोभ आदि) दूर हो गये, सत्वगुण की अधिकता हो गयी। हृदय में परमात्म चैतन्य प्रकाशित हो गया तो मानो व्यक्ति को परमात्मा ने अपना लिया। उसको जीवन में कोई भय चिन्ता नहीं रहती, उसका जीवन परमात्मा ही चलाता है। परमात्मा के अपनाने पर व्यक्ति सब प्रकार से निश्चिंत है, पूर्ण है, आनन्दमय है।

'सबहिं भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई'- जनक जी भगवान् श्री राम जी से कहते हैं कि आपने मुझको सब प्रकार से बड़ाई दी। इसका तात्पर्य है कि एक तो भगवान् श्री राम जी और चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ जनकपुर आये, यह भी जनक जी के लिये बड़ाई की बात हो गई। उसके बाद जनक जी की पुत्री से भगवान् श्री राम जी का विवाह हो गया, यह भी उनके लिये बड़ाई की ही बात है। यह सब तो लौकिक दृष्टि की बात है लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो जनक जी अब तक बड़े ज्ञानवान थे लेकिन जब भगवान् राम को देखा तो उन्हें परमात्मा का प्रेम भी प्राप्त हो गया। माने जनक जी में आध्यात्मिक रूप से कोई भी

कमी रही हो, वह भी पूरी हो गयी। अर्थात् भगवान् श्री राम जी की कृपा से जनक जी को भौतिक महानता भी प्राप्त हो गई और आध्यात्मिक बड़ाई भी प्राप्त हो गई।

इस प्रकार से शास्त्र बताता है कि परमात्मा की भक्ति, उसके ज्ञान से भौतिक और आध्यात्मिक समृद्धि दोनो हैं। केवल भौतिक समृद्धि कोई समृद्धि नहीं है लेकिन आध्यात्मिक जीवन जीते हुए व्यक्ति को भौतिक उपलब्धि हो, तो वह सुखदायी है, उसकी शोभा है।

जनक जी कहते हैं कि यदि सरस्वती जी और शेषनाग जी भी अगणित हो जायें और वे सब भगवान् की महिमा गाने लगें और करोड़ों कल्प तक उसका वर्णन करते रहें तो भी **'मोर भाग्य राउर गुन गाथा'** हे रघुनाथ जी! सुनो, वे सब मेरे सौभाग्य और आपके गुणों की गाथा का वर्णन फिर भी नहीं कर सकते।

किसी को ऐसा लग सकता हैं कि यहाँ पर तुलसीदास जी अतिश्योक्ति कर रहे हैं लेकिन दरअसल में सत्य यही है। परमात्मा की महिमा का पार नहीं है। मन बुद्धि उसे जान ही कितना सकते हैं? और वाणी में उसका वर्णन आ ही कितना सकता है? जनक जी कहते हैं कि भगवान् की महिमा का तो वर्णन असम्भव है ही लेकिन हमारे भाग्य का भी कोई पारावार नहीं है। इससे बड़ा भाग्य क्या होगा कि भगवान् श्री राम जी ने हमें अपना लिया ? यह सबके लिये प्रेरणादायक है कि हमको भी जनक जी जैसी भक्ति और ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

'मैं कछु कहउँ एक बल मोरें'- जनक जी कहते हैं कि जब कोई भगवान् की महिमा का वर्णन कर ही नहीं सकता है फिर भी हम जो बोल रहे हैं, तो कारण यह है कि हमारे पास एक बल

है कि जो भगवान् में थोड़ा सा भी प्रेम रखता है, उस पर भगवान् निश्चित ही प्रसन्न हो जाते हैं - इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं!

जनक जी की स्तुति सुनकर भगवान् राम ने जनक जी की तरफ कृपा दृष्टि से देखा तो जनक जी भगवान् से वरदान मांगते हुए कहते है कि मैं बार.बार हाथ जोड़कर आपसे यह वरदान माँगता हूँ कि **'मनु परिहरै चरन जनि भोरें'** हमारा मन भूलकर भी आपके चरणों को छोड़े नहीं। अर्थात् दृढ़ भक्ति की पहचान है कि वह भगवान् का निरन्तर स्मरण रखे, चित्त हर समय परमात्मा में लगा रहे और फिर वह व्यवहार करे।

भक्ति शास्त्रों का यह कहना है कि परमात्मा का ज्ञान तो बहुत ही सरल है। व्यक्ति को थोड़े से प्रयास से पता चल जाता है कि ये शरीर, प्राण, मन बुद्धि तो भौतिक हैं; इनका प्रकाशक जो चैतन्य है, वह नित्य विद्यमान है - बस वही आत्मा है। परन्तु हमारी वासनाएँ इस प्रकार की हैं कि चित्त उस आत्मा में लगा नहीं रहता, वहाँ से हट जाता है। अभ्यास यही करना है कि चित्त उसी में लगा रहे - यही भक्ति है। यही कार्य कठिनाई से होता है। तभी कहते है कि भक्ति दुर्लभ है। हम पूजा, नाम, जप, ध्यान आदि जो करते हैं, ये सब तो भक्ति प्राप्त करने के साधन हैं। साध्यभक्ति वह है जब साधन करते-करते चित्त परमात्मा में स्थिर हो गया। अब भगवान् के चरणों से मन हटता नहीं।

ज्ञान की दृष्टि से कह सकते हैं कि यदि हमारे मन ने अपने साक्षी चैतन्य को ही आत्मा (परमात्मा) करके जान लिया और उसी में चित्त लगा रहे, तो भगवान् के चरणों में लगा है। वेदान्ती लोग कहते हैं क़ि बुद्धि वेदान्त सिद्धान्त के वाक्यों में विचरण करती रहे, तो वो भी भक्ति ही है। शास्त्र भी परमात्मा के चरण हैं - चरण पकड़े रहें, तो भगवान् कहाँ से छूट सकते हैं?

स्तुति का नक्षत्र से साम्य –

१. अनुक्रम साम्य – श्रीरामचरितमानस में यह छठी स्तुति है और आकाश स्थित नक्षत्र मण्डल में छठे नक्षत्र का नाम आर्द्रा है, यह इस स्तुति का आद्रा नक्षत्र से, अनुक्रम की दृष्टि से साम्य हो गया।

२. नाम साम्य – आर्द्रा का अर्थ है – गीली, भीनी, और यह स्तुति शुरु से आखिर तक प्रेमरस से अत्यंत भीनी है। इसमें से प्रेमरस ऐसा टपका है कि पूर्णकाम भगवान् राम 'परिपोषे' माने संतुष्ट हुए। यह इस स्तुति का आद्रा नक्षत्र से, नाम की दृष्टि से साम्य हो गया।

३. आकार-रूप साम्य – आर्द्रा नक्षत्र का रूप मणि जैसा है, और जनकजी के पास भी 'राम भगति चिंतामनि सुंदर' माने भक्तिरूपी चिंतामणि है। इस भक्ति से जनकजी का ज्ञान और अधिक प्रकाशमान हो गया है। इस प्रकार से यह आकार-रूप की दृष्टि से इस स्तुति का आर्द्रा नक्षत्र से साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य – आर्द्रा नक्षत्र में एक ही तारा है, और इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भी श्रीराम के पदकमलों में प्रेमरूपी एक ही तारा है। यह तारों की संख्या की दृष्टि से साम्य हुआ।

५. देवता साम्य – आर्द्रा नक्षत्र के देवता भगवान् शिव हैं। आगे उत्तरकाण्ड में भगवान् श्रीरामजी अयोध्यावासियों को उपदेश देते हुए स्वयं ही कहते भी हैं कि 'संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि', यहाँ पर भी शिवजी की कृपा से ही जनकजी को यह स्तुति करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। इस प्रकार से यह देवता की दृष्टि से साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य – आर्द्रा नक्षत्र का सम्बन्ध **'काम'**

पुरुषार्थ से है। देखते हैं कि इस स्तुति में जनकजी भगवान् श्रीराम के सम्मुख अपनी परमार्थ सम्बन्धी मनोकामना प्रकट करते हुए कहते हैं कि हे रामजी! मुझे ऐसा वर दीजिये कि मेरा मन भूलकर भी आपके चरणों को न छोड़े। इस प्रकार इस स्तुति में **'काम'** तो है लेकिन वह परमात्मा की ओर उन्मुख होने के कारण कल्याणकारी हो गया है। इस प्रकार से आद्रा नक्षत्र और इस स्तुति का पुरुषार्थ की दृष्टि से साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - ७

भरद्वाजकृत स्तुति (अयोध्याकाण्ड) - पुनर्वसु नक्षत्र

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू।।
सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू।।
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी।।
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू।।

दो० - करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार।।१०७।।

अर्थ सहित व्याख्या –

भरद्वाज जी ने औपचारिक रूप से भगवान् राम से कुशलता पूछी और उन लोगों को बैठने के लिए आसन दिए। इसके बाद भरद्वाज जी ने बड़े प्रेम पूर्वक उनकी पूजा की। भगवान् की पूजा की मुख्य सामग्री प्रेम ही है। मानस में भी अन्यत्र आता है **'रामहि केवल प्रेम पिआरा'** परंतु देखने में आता है कि प्रेम ही दुर्लभ है। संसार में भौतिक जीवन में भी धन-सम्पत्ति सुलभ है लेकिन प्रेम ही दुर्लभ है।

प्रेम की दुर्लभता का कारण व्यक्तियों का अहंकार है और भगवान् को अहंकार बिल्कुल पसंद नहीं। जिसने अहंकार को छोड़ दिया वह भगवान् को पा गया।

जीवन रूपी मशीन में प्रेम की चिकनाहट पड़ी रहे, तो शांति बनी रहती है, आनन्दमय जीवन बना रहता है। यह प्रेम भी समाज में तब आता है जब परमात्मा की कृपा हो। **परमात्मा स्वयं**

आनन्दस्वरूप है — वह जब हृदय में आता है, तो आनन्द का रूप बदल कर प्रेम बन जाता है। इसीलिए संत महात्माओं के हृदय, समाज के लिए प्रेम से परिपूरित रहते हैं। यही प्रेम व्यवहार में त्याग के रूप में प्रकट होता है। शास्त्र हमें ये आध्यात्मिक रहस्य बताते रहते हैं।

इस प्रकार भरद्वाज जी ने बड़े प्रेमपूर्वक भगवान् की पूजा करके भगवान् को सन्तुष्ट कर लिया। अब तक सायंकाल हो आया था तो भरद्वाज जी आकर भगवान् के पास बैठे। उस समय उनके बीच जो वार्ता हुई उसका संक्षेप तुलसीदास जी यहाँ देते हैं।

भरद्वाज जी ने बड़े प्रेम और विनम्रता के साथ भगवान् राम से कहा कि **'आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू'** - हे प्रभु! आज तक हमने जो तपस्याएँ, तीर्थयात्राएँ और त्याग किए थे — आज हमें उन सबका सुंदर फल प्राप्त हो गया है। अब तक हमने जो जप, योग साधना, वैराग्य साधना की वह सब आज सफ़ल हो गई। माने आज तक जो भी शुभ साधन हमने किए थे, उन सबका सुंदर फल आज आपके दर्शनों के रूप में प्राप्त हो गया।

तुलसीदास जी ने प्रकारान्तर से भगवान् के दर्शन प्राप्त करने के लिये साधनाएँ गिना दी हैं। इनमें **तीर्थयात्रा** प्रारम्भिक एवं स्थूल साधना है — उसके बाद **तपस्या** है फिर साधनाएँ क्रमशः सूक्ष्मतर होती जाती हैं जैसे **जप**, जिससे त्याग और वैराग्य बढ़ता जाता है। अंत में **जोग** (अष्टाङ्ग योग, भक्ति योग या ज्ञान योग) है, यह सबसे सूक्ष्म साधना है।

तपस्या से तात्पर्य है इन्द्रिय निग्रह, मनोनिग्रह। नियमितता एवं समयबद्धता भी एक तपस्या है, **माने सब कार्य नियमपूर्वक,**

ठीक समय पर, उत्साहपूर्वक, सुचारू रूप से अच्छे ढंग से करना भी एक तपस्या है। (जीवन में सब कार्य मशीन की तरह ठीक समय से होते जायें लेकिन परमात्मा में प्रेम (भक्ति साधना) मशीन की तरह नहीं होना चाहिये, वरन् उसमें भावना का महत्त्व है।) नियमितता एवं समयबद्धता व्यक्ति का महान गुण है – इन्द्रियों पर नियन्त्रण रहे, तब यह गुण आता है।

इस प्रकार भरद्वाज जी ने आध्यात्मिक साघनों की समस्त रूपरेखा स्पष्ट कर दी। इन साधनों को करते-करते अंत में परमात्मा की प्राप्ति होती है। वह प्राप्ति चाहे हृदय में उसके दर्शन के रूप में हो अथवा वह आकर नेत्रों के सम्मुख प्रकट हो जायें जैसे कि भरद्वाज जी के सम्मुख भगवान् स्वयं प्रकट हो गये हैं।

'लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी' - भरद्वाज जी कहते हैं कि हे भगवन्! आपके दर्शन से बढ़कर दूसरा कोई लाभ और दूसरा कोई सुख नहीं है।

गीता में भी भगवान् कहते हैं **'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः'** - *परमात्मा की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर (योगी) उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है।* इसका कारण यह है कि हर व्यक्ति सुख चाहता है और परमात्मा स्वयं आनन्दस्वरूप है, वह आनन्द की पराकाष्ठा है, अगर वही किसी को मिल गया, तो अब और क्या चाहिए? परमात्मा की प्राप्ति हो गयी, तो **'आस सब पूजी'** माने अब कोई कामना नहीं बची, पूर्ण काम हो गया।

भरद्वाज जी कहते हैं कि हे भगवान्! अब कृपा करके हमको ऐसा वरदान दो कि आपके चरणों में सहज प्रेम बना रहे।

ध्यान देने की बात है कि भगवान् की भक्ति इतनी बड़ी चीज़ है जो भगवान् के दर्शन के बाद भी अपेक्षणीय है। भक्ति की वैसे तो बहुत बड़ी महिमा है लेकिन संक्षेप में कहें तो – **जब चित्त परमात्मा में स्थित हो जाये और परमात्मा से हटे नहीं, तो इस स्थिति का नाम है भक्ति!**

जीव तो परमात्मा की ओर बढ़ने को साधना करता ही है और परमात्मा तक पहुँच भी सकता है – परन्तु परमात्मा भी कृपा करके उसे अपना ले कि हाँ ठीक, तुम हमारे अपने हो गये; तब भक्ति प्राप्त होती है।

इस (भक्ति की) अवस्था में अज्ञान निवृत्त हो जाता है और अज्ञान के कार्यरूप अंतःकरण की वृत्तियाँ शांत हो जाती हैं। संचित कर्म समाप्त, संशय और विपर्यय (विपरीत ज्ञान) भी समाप्त हो जाते हैं। वह व्यक्ति अपने आपको परमात्मा से अभिन्न अनुभव करता है। इस अवस्था का नाम है पराभक्ति। यह पराभक्ति व्यक्ति को किसी साधन से प्राप्त नहीं होती वरन् परमात्मा के अनुग्रह से प्राप्त होती है। यह व्यक्ति की पूर्णावस्था है।

'करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार' - भरद्वाज जी कहते हैं कि हे प्रभु! जब तक व्यक्ति कर्म, वचन और मन से छल छोड़कर आपका भक्त नहीं है; तब तक वह चाहे करोड़ों उपाय कर ले लेकिन उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता। माने निश्छल भक्ति होनी चाहिए। इसी में विश्राम है, शांति है, सुख है।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - अनुक्रम के हिसाब से, मानस की २८

स्तुतियों में यह स्तुति सातवें नम्बर पर आती है और आकाश स्थित नक्षत्र मण्डल में सातवाँ नक्षत्र पुनर्वसु है। यह इस स्तुति का पुनर्वसु नक्षत्र से अनुक्रम की दृष्टि से साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - सातवें नक्षत्र का नाम पुनर्वसु है;और वसु =धन अथवा रत्न, और भरद्वाजजी के हृदय में रामरूपी धन या वसु तो पहले से ही था, लेकिन वह वसु आज पुनः प्रत्यक्ष सगुण-साकार भगवान् श्रीरामजी के रूप में उनके सामने आ विराजे हैं। इसलिये यह पुनःवसु अथवा पुनर्वसु हो गये। आज तो यह वसु भरद्वाजजी के आश्रम में रहेंगे ही, लेकिन वनवास समाप्ति के पश्चात् पुनः एक रात यहाँ आकर रहेंगे; इसलिये भी ये पुनर्वसु हैं। यह इस स्तुति एवं पुनर्वसु नक्षत्र के बीच नाम की दृष्टि से समानता हो गयी।

३. आकार-रूप साम्य - चार तारों से मिलकर पुनर्वसु नक्षत्र का आकार घर के समान दिखाई देता है। और इस स्तुति को सुनकर भगवान् श्रीरामजी कहते हैं कि **'सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू'**। देखते हैं कि कर्म, उपासना, ज्ञान और भक्ति से ही, कोई साधक गुणसमुदाय का गेह (घर) हो सकता है। यह आकार की दृष्टि से इस स्तुति का पुनर्वसु नक्षत्र से साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य - पुनर्वसु नक्षत्र में चार तारे हैं, इसीप्रकार इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भी १. निष्काम कर्म (तप तीरथ त्यागू), २. उपासना (जप), ३. ज्ञान (विराग, योग) एवं ४. भाव-भक्ति के रूप में चार तारे हैं।

५. देवता साम्य - पुनर्वसु नक्षत्र के देवता देवमाता अदिति हैं। 'कस्यप अदिति तहाँ पितुमाता। दसरथ कौसल्या बिख्याता।'

और कौसल्या माता के रूप में अवतरित देवमाता अदिति ने भगवान् को वनगमन की अनुज्ञा दी, तभी भरद्वाजजी को श्रीरामरूपी वसु के दर्शन, पुनः प्रत्यक्ष, सगुण-साकार रूप में प्राप्त हुए, और वे यह स्तुति कर पाये हैं। इस प्रकार से पुनर्वसु नक्षत्र एवं इस स्तुति के मध्य, यह देवता की दृष्टि से साम्य हो गया।

६. **पुरुषार्थ साम्य** - आकाश स्थित नक्षत्र मण्डल में सातवाँ नक्षत्र पुनर्वसु एक **अर्थ नक्षत्र** है। देखते हैं कि सातवीं स्तुति में भरद्वाजजी भगवान् श्रीरामजी से कहते हैं कि 'लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी' - हे भगवान्! आपके दर्शन से बड़ा कोई लाभ और कोई भी सुख संसार भर में नहीं है। अर्थात् सबसे बड़ा अर्थ, तो परमात्मा प्राप्ति ही है। इस प्रकार इस स्तुति में **अर्थ** की चर्चा तो है, लेकिन वह परमार्थ के रूप में है। यह इस स्तुति और पुनर्वसु नक्षत्र के मध्य पुरुषार्थ की दृष्टि से साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - ८

बाल्मीकिकृत स्तुति (अयोध्याकाण्ड) - पुष्य नक्षत्र

सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी।।
कस न कहहु अस रघुकुलकेतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू।।

छं० - श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की।।
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी।।

सो० - राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।।१२६।।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे।।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा।।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।
चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।।
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे।।
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा।।

दो० - पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ।।१२७।।

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने।।
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी।।
सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता।।
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे।।
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे।।
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी।।
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक।।

दो० - जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु।।१२८।।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा।।
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी।।
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा।।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।।
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा।।
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना।।
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी।।

दो० - सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ।।१२९।।

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया।।
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।।
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी।।
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।।
जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी।।
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी।।
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे।।

दो० - स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात।।१३०।।

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं।।
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका।।
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही।।
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई।।
सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा।।

दो० - जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु।।१३१।।

एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए।।
कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक। आश्रम कहउँ समय सुखदायक।।
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू।।
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू।।
नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तपबल आनी।।
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि।।
अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।।
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू।।

दो० - चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ।।१३२।।

अर्थ सहित व्याख्या –

भगवान् राम की **'सहज सरल'** वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि बाल्मीकि जी बोले – धन्य हो! धन्य हो! हे सूर्य वंश का नाम ऊँचा करने वाले भगवान् राम! आप भला ऐसा क्यों नहीं कहेंगे? **'तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू'** - आप तो सदा श्रुतियों रूपी सेतु[1] की रक्षा करने वाले हो। बाल्मीकि जी कहते हैं कि हे भगवान् राम! आप ही सारे जगत् के स्वामी परब्रह्म परमात्मा हो और जानकी जी आपकी शक्ति स्वरूपा माया हैं। ये आपकी वह माया हैं जो सारे जगत् की रचना, पालन और संहार करने वाली हैं।

---

१. संसार एक सागर के समान है और जीव इसमें पड़ कर छटपटाता रहता है परंतु इस अथाह सागर को पार नहीं कर पाता। इसके पार जाने का उपाय है कि श्रुतियों के बताये मार्ग (वैदिक मार्ग) पर चलते हुए जीवन के व्यवहार करो, तो बड़ी आसानी से इस संसार के पार (परमात्मा तक) पहुँच जाओगे। इस प्रकार श्रुतियाँ सेतु के समान हो गईं।

माया जगत् की रचना इन्द्रजाल के जादू के समान करती है। माने जगत् वास्तव में कुछ है नहीं – केवल भासित होता है। परमात्मा इस जगत् में अधिष्ठान रूप में विद्यमान है। परमात्मा की सत्यता जगत् के द्वारा जब हमको देखने में आती है तो जगत् सत्य न होते हुए भी सत्य दिखाई देता है। यह शास्त्र मत है। इसलिए जगत् को ब्रह्म के रूप में देखना चाहिए, यही तात्त्विक दृष्टि है। वही ब्रह्म अवतार लेकर सगुण रूप में भगवान् राम हो गये और उनकी मायाशक्ति सीता जी हो गयीं। अब लक्ष्मणजी की बात बताते हैं –

'जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी' - बाल्मीकि जी पौराणिक भाषा में कहते हैं कि लक्ष्मण जी शेषनाग के अवतार हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड शेषनाग के सहस्त्र फनों के ऊपर टिका हुआ है। लेकिन इस कथा को तात्त्विक रूप से देखें तो पता लगता है कि जब नामरूपात्मक सारे स्थूल और सूक्ष्म जगत् को अपनी बुद्धि से नेति-नेति[1] कह कर हटा दोगे तो अब बचा शून्य! सारी स्थूल-सूक्ष्म सृष्टि इसी शून्य पर टिकी है, इसी शून्य को पुराणों में शेषनाग कहते हैं।

जगत् की दृष्टि से तो यह शून्य अंतिम वस्तु हो गयी। लेकिन अब वेदांत आगे सुझाता है कि शून्य भी अंतिम वस्तु नहीं है क्योंकि इस शून्य का ज्ञान जिसे होता है, वह चेतन सत्ता शून्य से परे है और वही है आत्मा-परमात्मा!

एक दृष्टि से देखो तो परमात्मा के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। **परमात्मा यदि भावात्मक है, तो उसी का निषेधात्मक पक्ष लो, तो वह शून्य है। परमात्मा को यदि निष्क्रिय करके देखो, तो**

---

१. अर्थात् विचार करो कि बाह्य स्थूल जगत् और आंतरिक सूक्ष्म जगत्; यह सब नाशवान है, इसलिए यह सब परमात्मा नहीं है।

वह परमात्मा है और उसी को सक्रिय करके देखो, तो वह माया है। इसलिए बुद्धि में समाधान आना चाहिए। समाधान माने ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके बुद्धि को उसी में विश्राम करने दो।

जो परब्रह्म परमात्मा है वही मानव शरीर धारण करके **'चले दलन खल निसिचर अनी'** - दुष्ट राक्षसों की सेना का नाश करने के लिए चले हैं, जिससे कि जगत् में धर्म का पालन होता रहे। लोग माया के दुःखों से छुटकारा पाकर शांतिमय आनन्दमय जीवन जिएँ – इसी बात की शिक्षा देने के लिए परमात्मा को अवतार लेना पड़ता है। वह अवतार लेकर जीवों को बता देता है कि तुम्हें जो यह नामरूपात्मक जगत् दिखाई दे रहा है यह सत्य नहीं है। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप तो वही है जो हमारा है। **अपने स्वरूप को पहचानो और आत्मभाव में आ जाओ। तुम्हारे सारे दुःख समाप्त हो जायेंगे।**

शास्त्रों का यही संदेश है कि जागो! अपने आत्मस्वरूप में आओ।

'राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर' - हे राम! आपका स्वरूप वाणी के अगोचर, बुद्धि से परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद उसका वर्णन सांकेतिक भाषा में नेति-नेति कह कर करते रहते हैं। भगवान् राम परमात्मा हैं, माने हमारा ही सर्वश्रेष्ठ स्वरूप हैं। ये इन्द्रियों, मन, बुद्धि से परे की बातें हैं – लेकिन इस बात में शास्त्र ही प्रमाण हैं। इसलिए अज्ञान अवस्था में भले ही अनुभव न आये लेकिन पहले तो शास्त्र और गुरु के आधार पर यह अस्वीकार कर दो कि मैं शरीर, मन, बुद्धि हूँ। फिर शास्त्र ही यह अनुभव में आने की तरकीब भी बता देता है कि शरीर, मन, बुद्धि का जो द्रष्टा साक्षी है, वही परमतत्त्व हम हैं।

बाल्मीकि जी कहते हैं कि हे राम जी! सारा स्थूल एवं सूक्ष्म जगत् तो दृश्य पदार्थ है और आप इसके द्रष्टा हो।

भगवान् राम सबके आत्मा, परमात्मा हैं, इसलिए इस प्रकार समझना चाहिए कि हम स्वयं सारे जगत् के द्रष्टा हैं यह द्रष्टा साक्षी सर्वोपरि है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी इसी से उत्पन्न हुए हैं। परमतत्त्व तो निर्विकार है, माया का स्वामी और माया से परे है लेकिन ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिगुणात्मक हैं। इसलिए ये तीनों भी उसी साक्षी द्रष्टा के आधीन कार्य करने वाले हैं। **'तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा'** - हे राम जी! जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी आपके मर्म (गूढ़ार्थ) को नहीं जानते तो भला और कौन आपको जान सकता है?

'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई' - परमात्मा अप्रमेय है, परात्पर है, बुद्धि के अगोचर है लेकिन फिर भी परमात्मा अज्ञात वस्तु नहीं है। तथ्य यह है कि बुद्धि को उद्विग्न करके परमात्मा को जानना चाहोगे तो परमात्मा ढकता चला जायेगा लेकिन बुद्धि को इतना शांत होने दो जैसे कि तरंग सागर में डूब जाती है, तो जल तरंगहीन हो जाता है। ऐसी स्थिति में परमात्मा स्वयं हृदय में प्रकट हो जायेगा। जब व्यक्ति अपने शरीर, प्राण, मन, बुद्धि में अहं भाव (जीव भाव) को त्याग देता है, तब वह परमात्म स्वरूप होकर ही परमात्मा को जानता है। परमात्मा से भिन्न रहकर कोई परमात्मा को नहीं जानता।

'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई' - भक्ति शास्त्र में पौराणिक भाषा में यह कहते हैं कि परमात्मा को जानकर वह परमात्मा में एकीकृत हो जाता है और वेदांत यह कहता है कि परमात्मा में एकीकृत होकर ही परमात्मा को जाना जाता है। लेकिन यह

केवल भाषा की दुर्बलता है, बात एक ही है कि परमात्मा को प्राप्त करने के लिए अहं भाव समाप्त करना है।

हे भक्तों के **'उर चंदन'** - माने आप भक्तों के हृदय में वास करते हो और हृदय के तीनों तापों को हर कर उनके हृदय को चंदन के समान शीतलता प्रदान करते हो। ऐसे परमात्मा को केवल भक्त लोग ही जान पाते हैं। इस प्रसंग में भक्त से तात्पर्य है, वे व्यक्ति – जिनका चित्त हर समय परमात्मा में लगा रहता है। माने **अपने हृदय में मन, बुद्धि, अहंकार आदि सबके द्रष्टा साक्षी, अनादि अनन्त, नित्य निर्विकार चैतन्य सत्ता को विद्यमान देखो और उस चेतना में ही अपने चित्त को लगाये रखो यह भक्ति है।**

'चिदानंदमय देह तुम्हारी' - बाल्मीकि जी कहते हैं कि हे रघुनन्दन! आप सच्चिदानन्द स्वरूप तो हो ही, परंतु आपने जब अवतार लिया है, तो आपका यह मानवाकार शरीर भी चेतना और आनन्द का पुंज है। जैसे सोने से बनी मूर्ति स्वर्णमयी कहलाती है ऐसे ही आपका शरीर आनन्दमय, चिन्मय है और जो निर्विकार व्यक्ति हैं, वे ही आपको जान पाते हैं। माने परमात्मा को प्राप्त करना है, तो उसके लिए अधिकारी बनो। शंकराचार्य जी कहते हैं कि अधिकारी वे हैं जो विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितीक्षा, श्रद्धा, समाधान) और मुमुक्षता से सम्पन्न हैं। अधिकारी व्यक्ति ही निर्विकार हो पाता है।

'नर तनु धरेहु संत सुर काजा' - आपने देवता और संतों के हित के लिए यह मानवाकार शरीर धारण किया है और अब एक साधारण राजा के समान व्यवहार कर रहे हो। हे राम जी! आपके चरित्रों को देखकर अज्ञानी व्यक्ति तो मोह में पड़ते हैं और

जो बुद्धिमान व्यक्ति हैं उनको वही लीला देखकर सुख प्राप्त होता है। क्योंकि उन्हें ये सब लीलाएँ शिक्षा का स्रोत लगती हैं, उन्हें इनसे प्रेरणा मिलती है।

'तुम्ह जो कहहु करहु सब साँचा' - बाल्मीकि जी कहते हैं कि हे प्रभु! आप जो कुछ लीला करते हो, वह सब ठीक भी है क्योंकि जैसे **'काछिअ'**, माने वेष धारण किया है, वैसा ही अभिनय करना ठीक भी है।

'पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ' - आप हमसे पूछते हो कि हम कहाँ रहें? इसमें दो प्रकार की बातें हैं। बाल्मीकि जी दोनों प्रकार से विचार करते हैं। एक बात तो यह कि आप परमात्मा हो और परमात्मा को कहाँ रहना चाहिए, इस पर अलग तरह से विचार होगा और यदि आप एक राजकुमार होने के नाते रहने के स्थान पूछते हो, तो यह दूसरी बात है और इस पर दूसरी तरह विचार होगा।

बाल्मीकि जी कहते हैं कि हे राम जी! आप तो परब्रह्म परमात्मा हो, सर्वव्यापी हो बल्कि आप ही सर्वत्र हो। ये देश काल तो सब प्रतीति मात्र हैं। इसलिए यह कहना भी औपचारिक है क्योंकि देश काल ही नहीं, तो सर्वव्यापी की क्या बात? परमात्मा तो जैसा है तैसा है! लेकिन फिर भी साधकों के लिए बोला जाता है कि परमात्मा सब जगह है। इसलिए मुझे आपसे यह पूछते हुए संकोच हो रहा है कि ऐसी कौन सी जगह है जहाँ आप नहीं हो? जहाँ हम आपसे कह दें कि आप यहाँ रहो।

इस प्रसंग में बाल्मीकि जी तो भगवान् राम को रहने के स्थान बता रहे हैं लेकिन तुलसीदास जी इसी प्रसंग के सहारे साधकों को परमात्मा की प्राप्ति के साधन बताते हैं। बाल्मीकि जी

भगवान् को तरह-तरह के भक्तों के हृदय में वास करने के स्थान दिखाते हैं। भगवान् तो सब जगह है लेकिन अभक्तों को वह अपने हृदय में उपलब्ध नहीं होता। इसका कारण है कि उनके हृदय में अज्ञान जन्य, वासनाएँ, कामनाएँ घटाटोप बादलों की तरह छायी हुई हैं जिनके कारण परमात्म चैतन्य का प्रकाश दिखाई नहीं देता। इन वासनाओं के आवरण को हटाने के लिए प्रयास करना पड़ता है। तो इसके माने यह हुए कि ज्ञानियों, भक्तों के हृदय में परमात्मा वास करता है – यह बात भी औपचारिक हुई, क्योंकि वह परमात्मा तो सभी जगह है।

शास्त्र का तात्पर्य यही है कि हम अपने चित्त को शुद्ध करें। शरीर, प्राण, मन, बुद्धि से ऊपर उठ कर आत्मभाव में पहुँचने की कोशिश करें। **स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर सब अनात्मा हैं – इनसे तादात्म्य करना ही अविद्या है**। माने इस प्रकार का संतुलन हो कि शरीर, प्राण, मन, बुद्धि की गति चलती भी रहे लेकिन उनसे तादात्म्य भी न हो। जहाँ यह संतुलन बिगड़ा, तो संसार के गड्ढे में गिर कर चोट खानी पड़ेगी। यह संतुलन बनाये रखना ही साधना है।

बाल्मीकि जी अनेक प्रकार के भक्तों के अनुसार अनेक प्रकार की साधनाएँ बताते हैं। **'सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने'** - मुनि की प्रेमपूर्ण अंतरंग बातें सुन कर भगवान् राम अपने अवतार का रहस्य खुल न जाये इसलिए सकुचाते हुए मन ही मन मुस्कराये कि ये मुनि हमारा वास्तविक स्वरूप भी जानते हैं। बाल्मीकि जी भगवान् का स्वरूप इसलिए जानते हैं क्योंकि बाल्मीकि जी को स्वयं अपना स्वरूप प्राप्त हो गया है। शास्त्र का सिद्धान्त है कि जिसे अपना स्वरूप प्राप्त हो जायेगा उसे परमात्मा

का स्वरूप भी प्राप्त हो जायेगा क्योंकि जो आत्मा है वही परमात्मा है।

भगवान् कुछ बोले नहीं तो बाल्मीकि जी हँस कर **'कहहिं बहोरी'** - फिर बड़ी ही मधुर और कोमल वाणी[1] बोलते हैं। बाल्मीकि जी कहते हैं कि हे राम जी! सुनिये, अब हम आपको वह स्थान बताते हैं जहाँ आपको लक्ष्मण जी और सीता जी सहित निवास करना चाहिए।

जब बाल्मीकि जी यह बता रहे हैं कि आप वहाँ वास करो — तो यह मत समझो कि भगवान् राम लक्ष्मण जी और सीता जी तीन व्यक्ति हैं जो कहीं वास करेंगे। इन तीनों के अर्थ क्या हैं, यह समझो। **भगवान् राम माने परमात्मा**। जिसके हृदय में परमात्मा का वास होता है वह प्रसन्नता, शांति, परमानन्द का अनुभव करता है — ये सब परमात्मा के ही लक्षण हैं। **सीता जी माने विद्या माया** अथवा भक्तिमयी माया जिसके कारण हृदय में भक्ति भावना उत्पन्न होती है। **परमात्मा और उनकी शक्ति (माया) के बीच जो एक शून्यता है वह लक्ष्मण जी हैं**। जगत् (माया) का निषेध करो तो शून्य आ गया और शून्य का प्रकाशक परमात्मा हो गया।

'जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना' - अब बाल्मीकि जी भगवान् को वास करने के लिए पहला स्थान बताते हैं कि जिनके कान समुद्र के समान हैं। माने आपकी कथारूपी अनेकों सुन्दर नदियों से निरन्तर भरते रहने पर भी कभी वे पूर्ण तृप्त नहीं होते। उनके हृदय आपके वास के लिए **'रूरे'** माने विरले गृह हैं। विरले गृह इसलिए हैं क्योंकि अधिकांश हृदयों में तो रावण आदि निशाचरों का ही वास है।

---

१. अपने सभी शास्त्र कहते हैं कि जहाँ आध्यात्म की चर्चा हो तो सही बात तभी है जब उसके साथ में निरहंकारता, विनम्रता, प्रियता और मधुरता हो।

बाल्मीकि जी की कही यह बात एक साधारण कथन मात्र नहीं ः बल्कि इसमें सम्पूर्ण साधना है। **श्रवण साधना तब बनती है – जब चाहे एक ग्रन्थ पढ़ें, चाहे अनेक ग्रन्थ पढ़ें; लेकिन तब तक पढ़ते-सुनते रहें जब तक कि अपने शरीर, मन, बुद्धि के विकारों से छूटकर परमात्मा तक न पहुँच जायें। जब हृदय में परमात्मा की अनुभूति हो जाये तब समझो आपने श्रवण किया !**

श्रीरामचरितमानस में श्रवण साधना के उदाहरण भी बताते रहते हैं – जैसे पार्वती जी ने शंकर जी से कथा सुनी, कागभुशुण्डि जी न जाने कितने कल्पों से भगवान् की कथा कहते ही चले आ रहे हैं और सुनने वाले विहंग वहाँ एकत्र होकर कथा सुनते हैं। यह **'श्रवण'** अपने आप में सम्पूर्ण साधना है, उसी प्रकार अब आगे दूसरी साधना बताते हैं।

'लोचन चातक जिन्ह करि राखे' - जिन्होंने भगवान् के दर्शन रूपी मेघों की अभिलाषा में अपने नेत्रों को चातक बना रखा है। चातक सब नदियों सरोवरों के जल की उपेक्षा करता है, वह तो केवल स्वाति नक्षत्र में आकाश से गिरी हुई एक बूँद की लालसा रखता है – ऐसे ही जो नेत्र इस जगत् की वस्तुओं व्यक्तियों को न देखें केवल एक भगवान् के दर्शन की ही लालसा रखें **'तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक'** - तो उनके हृदय भी निर्मल हो जायेंगे। हे राम जी! उनके हृदय में भी आप लक्ष्मण जी और सीता जी सहित वास कीजिए। पहली साधना में तो श्रवणेन्द्रिय प्रधान थी और इस साधना में नेत्रेन्द्रिय प्रधान हो गयी।

वेदांत के अनुसार देखें तो जिसने अपने नेत्रों को चातक की तरह से बना रखा है – वह मात्र परमात्मा के दर्शन का ही

अभिलाषी है, तो अन्य लोग भले ही समझें कि वह अपनी आँखों से दुनियाँ को देख रहा है लेकिन वह सर्वत्र परमात्मा को ही देखता है। अपने भीतर विद्यमान चेतना को ही वह सर्वत्र (जड़ चेतन सारी सृष्टि में) विद्यमान देखता है। उसी चेतना को सर्वत्र देखने वाले व्यक्ति के हृदय में स्वभावतः ही परमात्मा का वास होगा।

बाल्मीकि जी कहते हैं कि जिसे सर्वत्र परमात्मा ही दीख रहा है, हे राम जी! ऐसे व्यक्तियों के हृदय आपके वास करने के लिए बहुत सुखदायक स्थान हैं।

'जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु' - श्रवणेद्रिय और नेत्रेन्द्रिय की साधना का वर्णन हो गया। अब देखें कि जिनकी जिह्वारूपी हंसिनी भगवान् के यशरूपी मानसरोवर में भगवान् के सुन्दर गुणों रूपी मोतियों को चुगती रहती है, माने जो लोग चाहे सगुण साकार परमात्मा का वर्णन करें या निर्गुण निराकार (सच्चिदानन्द स्वरूप) परमात्मा का निरूपण करें – परन्तु नित्य निरन्तर परमात्मा का ही गुणगान करते हैं – हे राम जी! आप उनके हृदय में बसिये।

सभी शास्त्रों में कहा गया है कि परमात्मा है तो सब जगह लेकिन यदि परमात्मा न मिल रहा हो, तो व्यक्ति परमात्मा को अपने हृदय में खोजे। बाल्मीकि जी उन व्यक्तियों के गुण, धर्म, लक्षण बता रहे हैं जिनके हृदय में भगवान् का वास है। अथवा यह कहें कि वे १४ प्रकार की साधनाएँ बता रहे हैं, जिनके द्वारा व्यक्ति परमात्मा प्राप्ति का अधिकारी बनता है। हमें इन साधनाओं को विभाजन करके नहीं देखना चाहिए। समग्र साधनाओं को एकीकृत करके देखें। समस्त ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त सबसे साधना हो। एकांगी

साधना से काम नहीं चलता। तुलसीदासजी ने समग्र जीवन को आध्यात्मिक बना दिया है।

'प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा' - बाल्मीकि जी कहते हैं कि जिसकी नासिका भगवान् को चढ़ाए पुष्पों की सुंदर सुगंध को भगवान् का प्रसाद समझ कर नित्य आदर के साथ ग्रहण करती है। माने जिसकी इन्द्रियों में विषयासक्ति नहीं है – इन्द्रिय भोगों को प्राप्त करते समय भी जिसे परमात्मा का स्मरण रहे। **'तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं'** - जो भगवान् को अर्पण करके भोजन करते हैं, तो भोजन के साथ जो जिह्वा तृप्ति आदि दोष हैं; वे उनके लिए समाप्त हो जाते हैं और उस भोजन के खाने से जो बन्धनकारी वासनाएँ बनती थीं, वे अब नहीं बनेंगी। इसी प्रकार वस्त्राभूषण भी भगवान् को अर्पण करके पहिनते हैं, तो यह भक्ति का एक रूप हो गया।

'सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी' - आध्यात्मिक जीवन का एक विधान यह भी है कि देवताओं (के मंदिर आदि) को देखकर, गुरु को देखकर और विप्रों को भी देखकर, बड़ी विनम्रता से प्रेम पूर्वक सिर झुकाते हैं। माने अपने अहंकार को उनके आगे अर्पित करते हैं। शास्त्र कहते हैं कि इन तीनों को प्रणाम करने वाला दीर्घ जीवी होता है। उनकी बुद्धि निर्मल होती है।

'कर नित करहिं राम पद पूजा' - भगवान् के चरणों के भी अनेक रूप हैं। स्थूल रूप तो यह है कि जो लोग भगवान् की मूर्ति की षोडशोपचार पूजा करते हैं। वे भगवान् के चरणों की स्थूल पूजा करते हैं। थोड़ा सूक्ष्म रूप से देखें तो सब प्राणी भगवान् के ही रूप हैं इसलिए उनके चरणों की सेवा करना

भगवान् की सेवा है। माने अपने जीवन के सब कार्यों को भगवान् की सेवा के भाव से करते हैं। गीता में भी भगवान् कहते हैं –

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

यदि थोड़ा और अधिक सूक्ष्म दृष्टि से देखें, तो समस्त शास्त्र भगवान् का ही वाङ्मय स्वरूप हैं। इन शास्त्रों में परमात्म बुद्धि रखकर इन शास्त्रों की सेवा (सेवन) करो – यही भगवान् के चरणों की सेवा है। माने शास्त्र का अध्ययन करो और उसकी हरेक बात को समझकर चित्त में धारण करो। इस प्रकार **'राम पद पूजा'** क्रम-क्रम से सूक्ष्म और कठिन होती जा रही है।

अगर शास्त्र अध्ययन के द्वारा वह परमात्मा हृदय में पहचान में आने लगे, तो अपने चित्त को निरन्तर उस हृदयगत् परमात्मा में ही लगाना भी उस परमात्मा के चरणों की सेवा है।

वेदांत सिद्धान्त के अनुसार हमारे मन, बुद्धि, अहंकार की वृत्तियों का प्रकाशक जो नित्य चैतन्य है, जिसे साक्षी कहते हैं, वह भगवान् का चरण है। उसकी सेवा (सेवन) करो – माने साक्षी से तादात्म्य करो तो भगवान् के चरणों की सेवा है। चरणों की सेवा करते-करते समग्र रूप परमात्मा अपने हृदय में आ जायेगा।

इस प्रकार भगवान् के चरणों का तात्पर्य अलग-अलग स्तर के लोगों के लिए अलग-अलग है।

'राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा' - अपने हृदय में एक भगवान् का ही भरोसा रखे और किसी पर आश्रित न रहे; जो ऐसी भक्ति रखेगा उसके हृदय में भगवान् वास करेंगे। भगवान् के तीर्थों में जाना भी आध्यात्मिक साधना है – चाहे स्थूल रूप से चलकर, शरीर के द्वारा तीर्थ स्थान में पहुँचे अथवा मानसिक शरीर से तीर्थ करें और फिर अपने आत्म स्वरूप साक्षी के दर्शन करना और फिर निरंतर उसी साक्षी में रमण करना भी तीर्थ यात्रा है। बाल्मीकि जी कहते हैं कि हे राम जी! इस प्रकार के जो भक्त हैं, आप उनके हृदय में वास कीजिए।

'मन्त्रराजु नित जपहिं तुम्हारा' - जो लोग आपका मन्त्र (अथवा गुरु का दिया हुआ मन्त्र) नित्य जपते रहते हैं। उनकी यह **'जप साधना'** भी स्थूल से सूक्ष्म होते-होते परमात्मा तक पहुँचा देती है। ऐसे व्यक्ति भगवान् का परिवार सहित पूजन करते हैं और शास्त्रों में बताये गये तर्पण (पितृ पूजन), होम (देव पूजन), विप्रों को भोजन कराना आदि समस्त कार्य - बड़ी श्रद्धा पूर्वक करते हैं। वे भगवान् से केवल भगवान् की भक्ति ही माँगते हैं।

'तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी' - गुरु को जो भगवान् से भी अधिक जाने कि ये परमात्मा स्वरूप हैं और हमें प्राप्त हैं। उनके प्रति बहुत अधिक सम्मान का भाव रखते हुए उनकी सेवा करते हैं – तो यह भी आध्यात्मिक साधना हो गई।

'सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ' - बाल्मीकि जी कहते हैं कि जितनी भी साधनाएँ बतायी हैं इन सबको व्यक्ति करे और इनके फल के रूप में केवल यही चाहे कि भगवान् के चरणों में प्रेम प्राप्त हो। हे भगवान्! उनके मन मंदिर में आप दोनों भाई, सीता जी सहित वास कीजिए। माने जो ऐसा

करेंगे उनके हृदय में वैराग्य, भक्ति और भगवान् का ज्ञान प्रकट होगा। उसका जीवन पूर्ण, परमानन्दमय हो जायेगा।

'काम कोह मद मान न मोहा' - बाल्मीकि जी कहते हैं कि जो परमात्मा को जानते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए अपने मन को सब प्रकार से निर्विकार बनाए हुए हैं, उनके हृदय में भी परमात्मा का वास है। जिनको काम, क्रोध, मद, अभिमान मोह इत्यादि कोई मानसिक विकार नहीं है। जिन्हें न लोभ है, न क्षोभ है, न राग है, न द्रोह है। जिन्हें कपट, दंभ नहीं है, जो माया से ग्रसित नहीं हैं – उनके हृदय में हे भगवन्! आप निवास करो।

जो लोग माया से पार हो गये हैं – वे ज्ञानी लोग हैं। **यह शरीर अथवा जगत् की कोई वस्तु माया नहीं है वरन् शरीर में जो अहं भाव है, ये अविद्या माया है।** व्यक्ति सत्य को नहीं समझता एवं अन्यथा भाव उसके मन में उत्पन्न हो गया है, यही भाव जीव के लिए अविद्या माया है। ऊपर जितने मानसिक विकार बताए गए ये सब अविद्या जन्य हैं। माने जब तक अविद्या के कारण शरीर से तादात्म्य रहता है, तो शरीर तो परिच्छिन्न है और उसमें षड्विकार भी लगते हैं इसीलिये शरीर को अभावों का अनुभव होता रहता है। और ये अभाव ही कामना उत्पन्न करते हैं। और जितने भी मानसिक विकार हैं, वे सब इस कामना के ही प्रकारान्तर रूप हैं। अविद्या के नाश के साथ ही अविद्या का सब परिवार (मानसिक विकार) भी समाप्त हो जाता है।

अविद्या विद्या का अभाव नहीं है। जब अविद्या होती है तब भी विद्या होती है। लेकिन अविद्या नाशवान है और विद्या अविनाशी है। **अविद्या का नाशक है शास्त्र सम्मत विचार।**

तुलसीदास जी कहते हैं कि जहाँ अविद्या का नाश हुआ, तो हृदय निर्मल हो गया। और जैसे आकाश से बादल हट जायें और सूर्य प्रकाशित हो जाए, इस प्रकार से अपने हृदय में परमात्मा अनुभवगम्य हो गया। माने अपने आप से, अपने आप में संतुष्ट हैं। कहीं कोई कमी नहीं, कोई दुःख का अनुभव नहीं। अपने आप को देख रहे हैं कि हम तो अमृत स्वरूप हैं, कृतकृत्य हैं, पूर्ण हैं, सर्वव्यापी हैं, अनादि अनन्त हैं। शांत प्रसन्नमय जीवन जी रहे हैं – इसी का नाम है कि हृदय में परमात्मा का वास हो गया।

'सब के प्रिय सब के हितकारी' - बाल्मीकि जी अब व्यवहार की बात बताते हैं कि जो सबको प्रिय लगने वाला और सबके हित का व्यवहार करता है, सुख-दुःख और निन्दा-स्तुति में एक समान भाव बनाये रखता है। जैसे कि गीता में भी भगवान् कहते हैं -

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।।

शीत-उष्ण, सुख-दुःख में, मान-अपमान में समभाव रखने वाले व्यक्ति के हृदय में परमात्मा का ही वास है। कह सकते हैं कि ऐसा व्यक्ति **उदासीन** रहता है। उदासीनता बहुत बड़ा गुण है। साधक को ज्ञान, वैराग्य और उदासीनता का अभ्यास करना चाहिए। इन तीनों के अलग-अलग फल हैं। वैराग्य का फल व्यावहारिक सुख है, आत्मज्ञान का फल मुक्ति है और उदासीनता का फल आत्मा के आनन्द की अनुभूति है। मन-बुद्धि के स्तर पर सापेक्षता है और इसीलिए सुख-दुःख और ज्ञान-अज्ञान का अनुभव होता है। जब मन बुद्धि के स्तर से उदासीन होकर इससे ऊपर उठें तो आत्मा तो आनन्द स्वरूप ही है। यह निरपेक्ष आनन्द है। माने ऐसे उदासीन व्यक्ति के हृदय में आनन्द स्वरूप परमात्मा का वास होगा।

'कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी' - बाल्मीकि जी कहते हैं कि जो व्यक्ति सत्य भी बोलते हैं और प्रिय भी बोलते हैं तथा जागते-सोते, हर समय भगवान् की शरण में रहते हैं। वैसे सुषुप्तावस्था में तो सब लोग परमात्मा की गोद में ही चले जाते हैं। ब्रहदारण्यक उपनिषद् कहता है कि सुषुप्ता अवस्था में जीव अपने जीव भाव में नहीं रहता – परमात्म भाव को प्राप्त कर लेता है लेकिन उसे इस बात का पता नहीं रहता। इसी कारण जागने पर वह फिर अपने शरीर की समस्याओं से घिर जाता है। यदि व्यक्ति जाग्रत में भी भगवान् की शरण में रहे, तो जाग्रत में भी परमानन्द मे रहेगा।

'तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं' - इस प्रकार से जो व्यक्ति परमात्मा के आश्रित रहता है। माने जिसका मन से प्रेम आप में है और वह शरण में भी आपकी ही है तथा आपके ही आश्रित है इस प्रकार के संगठित व्यक्तित्व वाला व्यक्ति जो है – हे राम जी! आप उसके हृदय में वास कीजिए। जो व्यक्ति पूर्ण रूप से नैतिकता और धर्म का पालन करने वाले हैं। अर्थात् जो परायी स्त्री को अपनी माता के समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विष के समान लगता है। जो दूसरे की समृद्धि देख कर हर्षित होते हैं और दूसरे की विपत्ति देख कर जिन्हें दुःख होता है, और हे राम जी! जिन्हें आप प्राणों के समान प्यारे हैं – उनके हृदय आपके रहने योग्य शुभ भवन हैं।

'स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात - हे भगवान्! जिनके लिए तुम ही स्वामी, सखा, पिता, माता गुरु सब कुछ हो – उनके हृदय में सीता जी सहित आप दोनों भाई निवास कीजिए। वास्तव में संसार के सारे नाते शरीर के ही

कारण से हैं – परंतु जब यह जान लिया कि शरीर तो हम हैं नहीं, हम तो जीव हैं, तो फिर जीव का वास्तविक माता-पिता तो भगवान् ही है। बाल्मीकि जी कहते हैं कि जिन्होंने इस प्रकार देहाभिमान त्याग दिया है ऐसे व्यक्तियों के हृदय में, हे भगवान्! आप निवास कीजिए।

इस प्रसंग में बाल्मीकि जी ने भगवान् को रहने के योग्य कुल १४ स्थान बताये हैं, जिनमें से अब तक ६ स्थानों की चर्चा हो चुकी है। एक प्रकार से देखें तो यह क्रमिक आध्यात्मिक विकास बताया गया है।

श्रवण से प्रारम्भ किया फिर भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा मन में जगी, फिर भगवान् के गुण गान करने लगे, फिर वैराग्य भाव आने लगा और तब मन बुद्धि के विकार दूर होने लगे। इस प्रकार से क्रम-क्रम से विकास होते हुए अंत में समग्र भाव से परमात्मा में ही स्थित रहना और परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी न चाहना – यह आध्यात्मिक विकास की पूर्णावस्था है। ऐसा व्यक्ति फिर बिना किसी बंधन के, शांत भाव से आनन्दमय व्यावहारिक जीवन जीता है।

यहाँ पर तुलसीदास जी बता रहे हैं कि आध्यात्मिक विकास में बुद्धि बदलती है तो उसके लक्षण इस प्रकार हैं कि – **'अवगुन तजि सब के गुन गहहीं'** - ऐसा व्यक्ति जब संसार में अन्य लोगों के सम्पर्क में आता है तो – गुण दोष तो सब में होते हैं – वह लोगों के दोष नहीं देखता केवल उनके गुणों को ग्रहण करता है। यह सब भगवान् की कृपा से ही सम्भव है वरना व्यक्ति की प्रकृति तो स्वभावतः बहिर्मुखी और अधोगामी होती है। कठोपनिषद् में भी यमराज नचिकेता को समझाते हुए कहते हैं –

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।

स्वयम्भू परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाकर मानो उन्हें नष्ट कर दिया। इसी से जीव बाह्य विषयों को देखता है, अन्तरात्मा को नहीं। कोई-कोई व्यक्ति ऐसा होता है जो अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी करके परमात्मा तक पहुँचता है। इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपने दुर्गुणों को छोड़ता रहे और गुणों को ग्रहण करता रहे।

'गुण' ग्रहण करने का थोड़ा और सूक्ष्म अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है – जो भगवान् उत्तरकाण्ड में भरत जी को बताते हैं।

सुनहु तात मायाकृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।।

अर्थात् ये गुण-दोष सभी मायाकृत हैं। सबसे बड़ा गुण तो यह है कि गुण-दोष के चक्कर में ही न पड़ो – केवल एक परमात्मा को पकड़ो जो त्रिगुणातीत है।

इस प्रकार शास्त्र की शिक्षा का रूप भिन्न-भिन्न स्तरों पर बदलता रहता है। जब तक व्यक्ति **धर्ममय जीवन** जी रहा है, तो भौतिक सुख, स्वर्ग और कीर्ति उसकी कामनाएँ हैं – तब तक उसे गुण दोषों को पहचान कर दोषों को छोड़ने का और गुणों को ग्रहण करने का प्रयास करना चाहिए। लेकिन जब वह **विरक्त** होकर **विज्ञान** के क्षेत्र में आ गया तब गुण-दोषों को छोड़ो, निर्विकार अनन्त चैतन्य (आत्मा) को पकड़ो।

अब बाल्मीकि जी कहते हैं कि आध्यात्मिक पुरुषों का जीवन त्यागमय होना चाहिए। **'बिप्र धेनु हित संकट सहहीं'** -

समाज में जितनी भी सत्सम्पत्ति (धेनु) है और जितने भी सत्पुरुष (बिप्र) हैं — उन सबकी रक्षा करने के लिए, आध्यात्मिक साधक, संकट सहने को भी तैयार रहता है।

तुलसीदास जी ने इस चौपाई में समस्त आध्यात्मिक जीवन और उसके सिद्धान्तों का सार दे दिया है। वे कहते हैं **'नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका'** - हे प्रभु! जो नीति में निपुण हैं और यशस्वी हैं, सदाचारी हैं, धर्मात्मा हैं ऐसे प्रशंसनीय व्यक्तियों के हृदय आपके वास करने का सुंदर घर है।

'गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा' - जो लोग ऐसा विवेक रखते हैं कि जहाँ कुछ अच्छा काम बने तो भगवान् की कृपा समझें और काम बिगड़ जाये तो अपना दोष समझें। जिनको सब प्रकार से आपका ही भरोसा है, जो आपकी ही शरण में रहता है और जिसे आपके भक्त (आध्यात्मिक व्यक्ति) प्रिय लगते हैं (हालाँकि वह भौतिक व्यक्तियों से भी द्वेष नहीं करता लेकिन उनमें उसकी प्रियता नहीं होती) उनके हृदय में आप सीता जी सहित वास कीजिये।

'जाति पाँति' - जिस व्यक्ति के हृदय में जाति-पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देने वाला घर — इन सबके प्रति कोई अहंता, ममता नहीं रहती, इन सबसे उसे वैराग्य हो जाता है और वह केवल आपको ही हृदय में धारण किए रहता है, हे भगवान्! उसके हृदय में आप वास करो।

स्वर्ग, नर्क ओर मोक्ष जिसकी दृष्टि में एक समान हैं क्योंकि वह जहाँ-तहाँ सब जगह आपको ही धनुष बाण धारण किए हुए देखता है और मन, वचन और कर्म से आपका ही सेवक है — हे भगवान्! आप उसके हृदय में बस जाइये।

बाल्मीकि जी का कहने का तात्पर्य यह है कि परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है। वह सर्वाधार है। जगत् में जो कुछ भी भला-बुरा, तीनों लोक, १४ भुवन हैं; वे सब परमात्मा के ही रूप हैं। परमात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है। जैसे मनुष्य के शरीर में शुभाशुभ अंग हैं ऐसे ही परमात्मा के विराट शरीर में शुभाशुभ सभी लोक हैं। इस सारी सृष्टि का अधिष्ठान होकर परमात्मा सारी सृष्टि में एक समान विद्यमान है। जो इस प्रकार अनुभव करता है उसके हृदय में तो परमात्मा का वास है ही।

अब बाल्मीकि जी भगवान् को १४वाँ स्थान बताते हैं। **'जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु'** - हे भगवान्! जिसे कभी भी कुछ न चाहिए और आपसे सहज स्नेह हो — ऐसे व्यक्ति के हृदय में तो आप निरन्तर वास करो, वह तो आपका अपना ही घर है।

इस सारे विस्तार का सार यह है कि जितनी भी **लौकिक स्तर की कामनाएँ हैं उन्हें त्यागकर जो निष्काम हो गया वह तो जीव नहीं रहा, आत्मा ही हो गया।** और आत्मा में तो परमात्मा का वास निरन्तर है ही क्योंकि आत्मा परमात्मा दोनों एक हैं।

रमण महर्षि **'सद्दर्शन'** में जीव के लक्षण बताते हुए यह भी कहते हैं कि जब तक कामना है तभी तक जीव है और जहाँ कामना छोड़ी तो जीव भाव भी छूट गया, वह आत्म स्वरूप हो गया। उसके शरीर, प्राण, मन, बुद्धि सब हैं परन्तु जीव भाव नहीं है। ऐसा व्यक्ति फिर लोक कल्याण के कार्यों में ही शेष जीवन लगा देता है। यही जीवन की दिव्यता है।

'एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए' - इस प्रकार से बाल्मीकि मुनि ने भगवान् राम को भवन दिखा दिये। ये जो १४ भवन दिखा

दिये वे तो सदा के लिए हैं। आज भी वैसे हृदय हैं और भगवान् अब भी उन हृदयों में वास करते रहते है। बाल्मीकि जी ने बड़े प्रेम पूर्वक जो बातें कहीं वे भगवान् राम को बड़ी अच्छी लगीं। अच्छी इसलिए लगीं क्योंकि भगवान् ने देखा कि मुनि ने साधकों के कल्याण के लिए इतनी साधनाएँ बतायी हैं – जिनसे साधक लोग साधना करके मुक्त हो जायेंगे।

'आश्रम कहउँ समय सुखदायक' - बाल्मीकि जी कहते हैं कि हे सूर्यकुल के स्वामी! इस समय जो लीला आप कर रहे हैं, उसके अनुसार आपके रहने के लिए जो स्थान सुखदायक हैं, अब वह भी हम आपको बता देते हैं।

यहाँ पर स्मरण रखने की बात है कि भगवान् ऋषियों, मुनियों से पूछ कर उनकी सम्मति से हर कार्य करते हैं। भगवान् ने मुनि से पूछा कि हमारे रहने के लिए ऐसा स्थान बताइये जहाँ रहने से हमारे कारण किसी भी मुनि आदि को कष्ट न पहुँचे – यह ज्ञानी का दृष्टिकोण है! बाल्मीकि जी भगवान् से प्रेम के कारण इस प्रकार के स्थान बताते हैं जहाँ भगवान् सुखपूर्वक रह सकें। यह **देव संस्कृति** है, माने इसमें देने की भावना है। दूसरों का हित करने की भावना है।

'चित्रकूट गिरि करहु निवासू' - बाल्मीकि जी कहते हैं कि यहाँ पास ही चित्रकूट पर्वत है आप उस पर जाकर निवास कीजिए। वहाँ आपको सब प्रकार से सुविधा होगी। माने खाने, पीने तथा जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन वहाँ पर विद्यमान हैं। ऋषि-मुनि भी वहाँ आयेंगे, सत्संग भी मिलेगा। वहाँ सुन्दर कामदगिरि है और उसके आस-पास बहुत सुन्दर वन है, जिसमें हाथी, सिंह, हिरन और पक्षियों का विहार स्थल है।

'नदी पुनीत' - वहाँ पर बड़ी पवित्र नदी भी है जिसका पुराणों में वर्णन आता है। अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया जी ने इस नदी को अपने तप से यहाँ प्रकट किया था। वह गङ्गा जी की ही धारा है और उसका नाम मंदाकिनी है। वह सब पापों को खा जाने वाली डाकिनी के समान है। वहीं पास ही अत्रि आदि ऋषि वास करते हैं, जो योग, जप और तपस्या से अपने शरीर को सुदृढ़ बनाते हैं।

तपस्या का वास्तविक अर्थ है कि इन्द्रियों और मन पर संयम रखते हुए अपने धर्म का पालन करें। संक्षेप में कहें तो अपनी नष्ट होती हुई शक्ति का संग्रह करके किसी महान कार्य के लिए उपयोग करना ही तपस्या है। तपस्या के बल पर ही व्यक्ति में इतनी दिव्य शक्ति उत्पन्न होती है कि वह शांत और एकाग्र होकर अपने हृदय में परमात्मा को ढूँढ सकता है।

'चलहु सफल श्रम सब कर करहू' - बाल्मीकि जी कहते हैं कि हे राम जी! चलिये, आप वहाँ पहुँच कर उन सब ऋषि-मुनि लोगों की तपस्या को सफल कीजिए जो आपके दर्शन पाने के लिए ये सब साधनाएँ कर रहे हैं।

आध्यात्मिक रूप से देखें तो जिस चित्त में उपद्रव शांत हो गए हैं, वह **चित्त ही चित्रकूट है**। इस प्रकार बाल्मीकि जी ने भगवान् को बसने के लिए जो १४ स्थान बताए – वे सब चित्रकूट हैं। बाल्मीकि जी ने चित्रकूट की महिमा का वर्णन किया, माने उन्होंने बताया कि जिस चित्त में भगवान् बसते हैं, वह कैसा होता है।

अब भगवान् चित्रकूट पहुँचे, तो सीता जी सहित दोनों भाइयों ने श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनी में स्नान किया।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - मानस-स्तुति-मण्डल में यह आठवीं स्तुति है और आकाश स्थित नक्षत्र मण्डल का आठवाँ नक्षत्र पुष्य है, इस प्रकारसे, इस स्तुति और पुष्य नक्षत्र के बीच अनुक्रम की दृष्टि से साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - आठवें नक्षत्र का नाम पुष्य है, 'पुष्यामि कार्याणि इति' अर्थात् यह कार्य का **पोषण** करने वाला है, इस नक्षत्र में शुरु किये गये कार्य की सहज सिद्धि होती है और कार्य करने से **संतोष** होता है; अतः इसे **सिद्ध** कहते हैं। देखते हैं कि बाल्मीकिजी इस स्तुति के अंत में कहते हैं कि हे श्रीरामजी! आप चित्रकूट में जाकर निवास कीजिये, जहाँ पर अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि रहकर तपस्या कर रहे हैं 'चलहु सफल श्रम सब कर करहू' - आप (उन्हें दर्शन देकर)उन सबके परिश्रम को सफल कीजिये। इस प्रकार से भगवान् श्रीराम के अवतार कार्य का **पोषण**-पुष्टि, अत्रि आदि मुनियों के परिश्रम की **सिद्धि**-सफलता और उन सबको **संतोष** प्राप्त होने में, यह स्तुति प्रेरक रही है।

पुष्य नक्षत्र सबसे **श्रेष्ठ** कहा जाता है, तो यह स्तुति भी **सबसे बड़ी** है। पुष्य नक्षत्र में तिथि शुद्धि आदि देखने की आवश्यकता नहीं होती है, तो इधर इस स्तुति में भी मुनि ने भगवान् को ऐसा ही स्थान बताया जहाँ पर कुछ भी बाधा नहीं हुई। हम देखते हैं कि पुष्य नक्षत्र एवं इस आठवीं स्तुति में, नाम की दृष्टि से तो अनेकों अर्थों में साम्य है।

३. आकार-रूप साम्य - पुष्य नक्षत्र का रूप-आकार बाण के जैसा है और इस स्तुति में भी प्रारम्भ में ही छंद से शुरु करके भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी, इन तीनों के अवतार के

रहस्य का भेदन (लक्ष्यभेद) किया गया है। यह आकार-रूप की दृष्टि से साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य – पुष्य नक्षत्र में तीन तारे हैं, तो इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भी श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी रूपी तीन तारे हैं; जो इस स्तुति में बारम्बार जगमगा रहे हैं। उनके नामों का उल्लेख इस स्तुति में अनेकों बार आया है।

५. देवता साम्य - पुष्य नक्षत्र के देवता **बृहस्पति** हैं। वृहस्पति देवताओं के गुरु हैं, और इस स्तुति का मूल इस बात में है कि इस समय भगवान् श्रीराम ने 'नर तनु धरेहु' होने के कारण एक 'प्राकृत राजा' के समान व्यवहार करते हुए मुनि बाल्मीकिजी को **गुरु के समान** मानते हुए, उनसे अपने रहने के लिये उचित स्थान पूछा है। बृहस्पति यदि देवों के गुरु हैं, तो यहाँ इस स्तुति में बाल्मीकिजी स्वयं भगवान् श्रीरामजी के गुरु का कार्य करते हुए, उनका मार्गनिर्देशन कर रहे हैं। यह देवता की दृष्टि से साम्य हुआ।

६. पुरुषार्थ साम्य - आठवाँ नक्षत्र पुष्य, **धर्म** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। देखते हैं कि इस आठवीं स्तुति में बाल्मीकि मुनि कहते हैं कि 'सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी' *देवताओं के कार्य के लिये आप राजा का शरीर धारण करके दुष्ट राक्षसों की सेना का विनाश करने के लिये चले हैं।* और देवतालोग धर्म के प्रतीक हैं, तो देवताओं की रक्षा का अर्थ है धर्म की रक्षा। इस प्रकार इस स्तुति में बाल्मीकिजी का कहना है कि भगवान् **धर्म** की ही रक्षा के लिये चले हैं। इसके अतिरिक्त इस स्तुति में बाल्मीकिजी ने भगवान् के रहने के जो १४ स्थान बताये हैं, वे सब भी धर्माचरण के प्रतीक ही हैं। तात्पर्य यह है कि

जहाँ **धर्म** का आचरण होता है, वहाँ पर परमात्मा वास करता है। इस प्रकार से देखते हैं कि यह स्तुति भी **धर्म** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। और यह इस स्तुति तथा पुष्य नक्षत्र के मध्य, पुरुषाथ के आधार पर साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - ६

अत्रिकृत स्तुति (अरण्यकाण्ड) - आश्लेषा नक्षत्र

छं॰ - नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।।
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं।।
निकाम श्याम सुंदरं। भवांबुनाथ मंदरं।।
प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं।।
प्रलंब बाहु विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय वैभवं।।
निषंग चाप सायकं। धरं त्रिलोक नायकं।।
दिनेश वंश मंडनं। महेश चाप खंडनं।।
मुनींद्र संत रंजनं। सुरारि वृंद भंजनं।।
मनोज वैरि वंदितं। अजादि देव सेवितं।।
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं।।
नमामि इंदिरा पतिं। सुखाकरं सतां गतिं।।
भजे सशक्ति सानुजं। शची पति प्रियानुजं।।
त्वदंघ्रि मूल ये नराः। भजंति हीन मत्सराः।।
पतंति नो भवार्णवे। वितर्क वीचि संकुले।।
विविक्त वासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा।।
निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांति ते गतिं स्वकं।।
तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं।।
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं।।
भजामि भाव वल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं।।

स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं।।
अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा पतिं।।
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे।।
पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं।।
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्ति संयुताः।।

दो० - बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि।। ४ ।।

अर्थ सहित व्याख्या –

अब अत्रि मुनि द्वारा की गयी, इस स्तुति से स्तुति करने का विधान भी पता लगता है। स्तुति यह समझ कर करनी चाहिए कि परमात्मा सर्वत्र है, और हमारे सामने साक्षात् है। भगवान् के प्रति आदर और समर्पण भाव ही होना चाहिए। प्रायः स्तुति करते समय लोग अपनी कामनाएँ भगवान् के आगे व्यक्त करते हैं या अपनी पीड़ाओं का निवेदन करते हैं। लेकिन शास्त्र मत यह है कि व्यक्ति को भगवान् की महिमा का स्मरण करना चाहिए और उसमें समर्पण भाव रखना चाहिए; उससे व्यक्ति के दुःख भय, चिन्ता क्लेश आदि अपने आप दूर होते हैं — उनके लिये कहने की आवश्यकता नहीं है। इस स्तुति में भी भगवान् की महिमा, उनके गुणों का वर्णन है।

'नमामि भक्त वत्सलं - हे भगवान्! मैं आपकी वन्दना करता हूँ। आप भक्तों पर वात्सल्य भाव रखते हैं, समस्त धर्मपरायण लोगों पर कृपालु हैं और आप बड़े कोमल स्वभाव वाले हैं। निष्काम पुरुषों को अपना धाम प्रदान करने वाले, आपके चरणकमलों की मैं शरण में हूँ। **'निकाम श्याम सुंदरं'** - आप अत्यधिक सुंदर

हैं, श्याम वर्ण के हैं और भवसागर का मन्थन करने के लिये मन्दराचल पर्वत की तरह से हैं। खिले हुए कमल के समान आपके नेत्र हैं और जिस पर भी इन नेत्रों की दृष्टि पड़ती है, उसके मद आदि दोष नष्ट हो जाते हैं।[१]

'प्रलंब बाहु विक्रमं' - आपकी बड़ी शक्तिशाली लम्बी-लम्बी बाहें हैं और हे प्रभु! आप अनन्त वैभव सम्पन्न हैं। आपने धनुष-बाण और तरकस धारण किया हुआ है और आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। सूर्यवंश की महिमा को बढ़ाने वाले हैं। शङ्कर जी के धनुष को आपने तोड़ा।

आप मुनि लोगों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं तथा राक्षसों का संहार करने वाले हैं। **'मनोज वैरि वंदितं'** - शङ्कर भगवान् आपकी वन्दना करते हैं। यहाँ देखें कि शङ्कर जी परमात्मा के विश्वास के प्रतीक हैं **जिसे यह विश्वास होगा कि एकमात्र परमात्मा ही सत् है बाकी सब कुछ मिथ्या है तो उसके मन में संसार की कामनाएँ रह ही नहीं सकतीं। माने उसके मन में कामदेव के शत्रु शङ्कर जी विद्यमान हैं।**

अत्रि मुनि कहते हैं कि हे भगवान्! आप ब्रह्मा आदि त्रिदेवों के भी पूज्य हैं, माने आप परब्रह्म परमात्मा हैं। **विशुद्ध बोध विग्रहं'** - अत्रि ऋषि कहते हैं कि आप ज्ञान के मूर्तिमान रूप हैं। और जो ऐसे गुणनिधान भगवान् का चिंतन करता है उसके सारे दोष दूर हो जाते हैं। आप लक्ष्मीपति भगवान् नारायण हैं, सुखों की खान हैं और सत्पुरुषों को सद्गति देने वाले हैं। आप ही इन्द्र के छोटे भाई (वामन अवतार) हैं और मैं सीता जी और लक्ष्मण जी सहित आपकी वन्दना करता हूँ।

---

१. भौतिक उपलब्धियों के फलस्वरूप व्यक्ति को जो नशा जैसा चढ़ता है, वह 'मद' कहलाता है।

'त्वदंघ्रि मूल ये नराः' - जो मनुष्य मत्सर (ईर्ष्या, डाह आदि) से रहित होकर आपके चरण कमलों का सेवन करते हैं, वे फिर कुतर्कों रूपी तरङ्गों से युक्त संसार सागर में नहीं गिरते। **'विविक्त वासिनः सदा'** - जो पुरुष एकान्त वास करते हुए मुक्ति की कामना से इंद्रिय संयम, मनः संयम आदि साधनाएँ करते हुए निरन्तर आपका भजन करते हैं — उन्हें आत्म स्वरूप की उपलब्धि हो जाती है।

'तमेकमद्‌भुतं प्रभुं' - आप ऐसे अद्‌भुत प्रभु हैं जिसको किसी प्रकार की कामना नहीं है जो सबका ईश्वर है, सर्वव्यापी है, सारे जगत् के गुरु हैं, अविनाशी, शाश्वत हैं, माने तीनों गुणों से परे नित्यचैतन्य हैं। केवल आप ही सत् वस्तु हैं और आपके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। **'भजामि भाव वल्लभं'** - मैं आपका भजन करता हूँ आप व्यक्ति के भाव ही देखते हो। विषयासक्त पुरुषों के लिये आपकी प्राप्ति दुर्लभ है। अपने भक्तों की सारी कामनाएँ पूरी करने के लिये आप कल्पवृक्ष हो। आप सर्वत्र सम हैं और जो आपकी सेवा करते हैं उनको आप प्राप्त भी होते हैं।

'अनूप रूप भूपतिं' - हे अनुपम सौन्दर्य से युक्त! हे पृथ्वीपति! हे सीतापति! मैं आपकी वन्दना करता हूँ मुझ पर आप प्रसन्न होइये। मैं आपकी शरण में हूँ मुझे अपने चरणों की भक्ति प्रदान कीजिये। जो मनुष्य इस स्तुति को आदरपूर्वक पढ़ेंगे, वे निश्चय ही आपकी भक्ति से युक्त होकर आपके धाम को प्राप्त होंगे, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

अत्रि मुनि ने इस प्रकार भगवान की स्तुति की और फिर सिर झुकाए हुए हाथ जोड़कर भगवान् से वरदान माँगते हैं कि हे नाथ! आपके चरण कमलों में मुझे अचल भक्ति प्राप्त हो और मेरी बुद्धि कभी भी आपके चरणों को भूले नहीं।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - श्रीरामचरितमानस में यह नौवीं स्तुति है और आकाश स्थित नक्षत्र मण्डल में नौवा नक्षत्र आश्लेषा है। यह तो नक्षत्र और स्तुति के बीच अनुक्रम साम्य हुआ।

२. नाम साम्य - आश्लेष = आलिंगन, मिलना। इस स्तुति में देखते हैं कि अत्रि मुनि नमामि, भजामि और भगवान् के चरणों के उल्लेख के सहारे से, अपने नेत्रों द्वारा; बारम्बार भगवान् के चरणों, भुजाओं और मुख का आलिंगन कर रहे हैं। इस प्रकार से यह स्तुति भी आश्लेषा हुई।

३. आकार-रूप साम्य - नक्षत्र का आकार उसमें के तारों से ही निर्मित होता है। आश्लेषा नक्षत्र का आकार चक्र की तरह का है। चक्र मण्डलाकार होता है और देखते हैं कि इस स्तुति में उपक्रम (पहले छंद) में 'नमामि', 'पदांबुजं' और 'भक्त'है तथा उपसंहार (छन्द सं० ११) में भी 'नमामि', 'पदाब्ज' और 'भक्ति' है, और स्तुति के अंत (छन्द सं० १२) में 'भक्ति संयुताः' है। इस प्रकार यह स्तुति भी चक्राकार दिखाई देती है। यह आकार-रूप साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य - ज्योतिष ग्रन्थों में आश्लेषा नक्षत्र में कहीं पाँच तारों का वर्णन है, तो कहीं पर छः तारे बताये गये हैं। लेकिन ६ की संख्या सही लगती है, क्योंकि इस नक्षत्र का आकार चक्र के जैसा है और चक्र में सम संख्या में 'अरे' (स्पोक) होते हैं। देखते हैं कि इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भी भगवान् श्रीराम के युगल चरण, युगल बाहु और युगल नेत्रों के रूप में कुल मिलाकर, ये छः तारे हैं। अन्य अंगों का वर्णन इस स्तुति में है भी नहीं। यह तारों की संख्या की दृष्टि से साम्य हुआ।

५. देवता साम्य - नक्षत्र के देवता **कद्रुजाः (सर्प)** हैं। जैसे कद्रू के पुत्र सर्पों ने सूर्य के घोड़ों को आवेष्टित कर लिया था, उसी प्रकारसे इस स्तुति में मुनि के नेत्रों ने, सूर्यवंश में अवतरित (दिनेश वंश मंडनं) भगवान् श्रीराम के चरण, भुजाएँ और नेत्रों आदि इन्द्रियोंरूपी घोड़ों को आवेष्टित कर लिया है। यह देवता की दृष्टि से साम्य सिद्ध होता है।

६. पुरुषार्थ साम्य - आश्लेषा नक्षत्र धर्म नक्षत्र है। देखते हैं कि यह स्तुति अपने आरम्भ एवं अंत, दोनों ओर से धर्म की शिक्षा के बीच में विद्यमान है। पहले तो भगवान् जैसे ही अत्रि ऋषि के आश्रम पर आते हैं, तो एक क्षत्रिय राजकुमार के धर्म का पालन करते हुए ऋषि के चरणों में दण्डवत् करने को झुकते हैं। और स्तुति के समाप्त होते ही ऋषि पत्नी अनुसूयाजी ने श्रीसीताजी को **स्त्री धर्म** की अनमोल शिक्षा दी है। इसलिये यह धर्म स्तुति-नक्षत्र है।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - १०

शरभंगकृत स्तुति (अरण्यकाण्ड) - मघा नक्षत्र

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला।।
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा।।
चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती।।
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना।।
सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा।।
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी।।
जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा।।
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा।।

दो० - सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम।। ८।।

अर्थ सहित व्याख्या –

शरभंग मुनि भगवान् राम से कहते हैं कि हे कृपा निधान! हे भगवान् शङ्कर के मनरूपी मान सरोवर में राजहंस के समान विचरण करने वाले भगवान्! सुनिये, अभी थोड़े दिनों की बात है; मैंने बहुत तपस्या की थी और उस तपस्या के बल पर मुझे ब्रह्मलोक प्राप्त करने का अधिकार मिल गया। तभी मैंने (इन्द्र से, जो कि मुझे ब्रह्मलोक ले जाने के लिये आये थे) यह सुना कि यहाँ पर शीघ्र ही परब्रह्म परमात्मा के अवतार, भगवान् राम स्वयं आने वाले हैं। (इन्द्र से) यह सूचना पाकर मैं तब ब्रह्मलोक नहीं गया, क्योंकि मैंने सोचा अब तो मैं भगवान् के दर्शन के बाद ही ब्रह्मलोक जाऊँगा।

'चितवत पंथ रहेउँ दिन राती' - तब से मैं दिन रात आपकी राह देखता रहा हूँ। अब आपके दर्शन प्राप्त हो गये तो इतने दिनों की प्रतीक्षा पूरी हुई – आज मेरी छाती में ठंडक प्राप्त हुई। हे नाथ! मैं तो सभी साधनों से विहीन हूँ, माने मेरी ऐसी कोई साधना नहीं है कि मैं आपको प्राप्त कर पाता। आपने अपना दीन सेवक जान कर मुझ पर कृपा की है।

वैसे तो तुलसीदास जी का मत यह है कि भगवान् की प्राप्ति किसी साधन से नहीं हो सकती। वे अन्यत्र भी कहते हैं।

यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई।।

माने भगवान् की प्राप्ति साधन से नहीं वरन् भगवान् की कृपा से होती है और वह कृपा किसी-किसी को ही प्राप्त होती है। परंतु यहाँ शरभंग ऋषि कहते हैं कि **'सो कछु देव न मोहि निहोरा'** हे देव! आपने जो मुझ पर कृपा की, मुझे दर्शन दिये तो यह कोई मुझ पर आपका अहसान नहीं है। हे भक्तों के मन के चोर! यह कार्य तो आपने अपनी प्रतिज्ञा रखने के लिये किया है। माने आपकी यह प्रतिज्ञा है कि आप दीनों की रक्षा करेंगे, इसीलिये आप दीनबंधु कहलाते हैं – तो आप मुझ जैसे दीनों की रक्षा करोगे ही।

'तब लगि रहहु दीन हित लागी' शरभंग जी कहते हैं कि हे भगवन्! आप कृपया थोड़ी देर इस आश्रम में और रुकिये; जब तक कि मैं यह शरीर छोड़ कर आपमें ही लीन न हो जाऊँ। अब तक मैंने जो भी योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत आदि किये हों, उन सबको करने का अभिमान मैं छोड़ रहा हूँ – वो सब आपको अर्पित करता हूँ। इस प्रकार शरभंग जी ने अपनी सब तपस्याएँ इत्यादि भगवान् को अर्पण कर दीं और उनके बदले भगवान् से भक्ति का वरदान माँग लिया।

इतनी ही देर में शरभंग ऋषि ने लकड़ियाँ इकट्ठी करके चिता बना कर तैयार कर ली और हृदय से सब आसक्तियों को निकाल कर भगवान् का स्मरण करते हुए उस चिता पर जा बैठे। **'सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम'** - और अपने मन में सोचने लगे कि हे नीले मेघ जैसे शरीर वाले, सगुण रूप भगवान् श्री राम जी! सीता जी और लक्ष्मण जी सहित — हे प्रभु! आप मेरे हृदय में निरन्तर वास कीजिये।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - श्रीरामचरितमानस में यह दसवीं स्तुति है और आकाश स्थित नक्षत्र मण्डल में दसवाँ नक्षत्र मघा है। यह इस स्तुति एवं मघा नक्षत्र का अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - मघा की तुलना बाणों से की गयी है, जैसे कि - 'दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई' और देखते हैं कि इस स्तुति के करने वाले शरभंग मुनि हैं, जिनके नाम में ही 'शर' शब्द है, और इस स्तुति के अंत में दोहे में 'नील जलद' भी है। इस प्रकार यह, इस स्तुति एवं मघा नक्षत्र में, नाम साम्य हो गया।

३. आकार-रूप साम्य - मघा नक्षत्र का आकार शाला अथवा घर के समान है। श्रीरामजी श्रीसीताजी एवं श्रीलक्ष्मणजी सहित जिस 'पर्णतृण शाला' में रहते थे, अब वे उसे छोड़कर चले हैं, और मुनि के हृदयरूपी शाला में सगुणरूप में वास करेंगे। मुनि ने वरदान माँगा है ना कि 'मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम'। यह स्तुति का नक्षत्र से आकार-रूप साम्य सिद्ध हो गया।

४. तारे संख्या साम्य - मघा नक्षत्र में पाँच तारे हैं, और इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भी **'रघुबीर कृपाला'** = कृपालु स्वभाव, **'प्रभु'**= ईश्वरत्व, **'नाथ'**= स्वामित्व, **'देव'**= प्रकाशदायत्व और **'श्रीराम'**= ऐश्वर्य और आनन्ददायकत्व के रूप में पाँच तारे हैं।

५. देवता साम्य - मघा के देवता 'पितर' हैं। मघा नक्षत्र में पितरों के लिये यज्ञ करते हुए, उनका आवाहन किया जाता है कि वे आवें और स्वधाकार से तृप्त हो जावें। इस प्रकार आवाहन करने पर वे मनोवेग से आते हैं। भगवान् श्रीरामसीताजी तो सारे जगत् के पिता-माता हैं, सारे विश्व के पितर हैं; और इनके लिये की गई स्तुति ही इन पितरों के लिये किया गया यज्ञ है, ये पितर आये हैं और तृप्त, प्रसन्न होकर लौट गये हैं। इस प्रकार मघा नक्षत्र और इस स्तुति में देवता साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य - मघा नक्षत्र एक **अर्थ** नक्षत्र है, और इस स्तुति में शरभंग मुनि अपने नेत्रों के अर्थ (इन्द्रियस्यार्थे), भगवान् श्रीरामजी के सगुण साकार रूप को, साक्षात् सामने प्राप्त करके कृतार्थ हो गये हैं (अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती)। मुनि का लक्ष्य मोक्ष नहीं है, इसीलिये उन्होंने तो भेदभक्ति का वरदान लेकर अपना परम **'अर्थ'** सिद्ध कर लिया है। इस प्रकार से इस स्तुति एवं मघा नक्षत्र के बीच पुरुषार्थ की दृष्टि से साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - ११

सुतीक्ष्णकृत स्तुति (अरण्यकाण्ड) - पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी।।
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी।
श्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं।।
पाणि चाप शर कटि तूणीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं।।
मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः।।
निसिचर करि वरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाजः।।
अरुण नयन राजीव सुवेशं। सीता नयन चकोर निशेशं।।
हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु विशालं।।
संशय सर्प ग्रसन उरगादः। शमन सुकर्कश तर्क विषादः।।
भव भंजन रंजन सुर यूथः। त्रातु सदा नो कृपा वरूथः।।
निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं।।
अमलमखिलमनवद्यमपारं । नौमि राम भंजन महि भारं।।
भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः।।
अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः।।
अतुलित भुज प्रताप बल धामः। कलि मल विपुल विभंजन नामः।।
धर्म वर्म नर्मद गुण ग्रामः। संतत शं तनोतु मम रामः।।
जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी। सब के हृदयँ निरंतर बासी।।
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम काननचारी।।
जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी।।

जो कोसल पति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना।।
अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।
सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए।।
परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही।।
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा।।
तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई।।
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना।।
प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा।।

दो० - अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम।।११।।

अर्थ सहित व्याख्या –

सुतीक्ष्ण मुनि भगवान् की पूजा के बाद स्तुति करते हैं। वे कहते हैं कि भगवन्! मेरी प्रार्थना सुनिये, मैं आपकी स्तुति कैसे करूँ, मेरी यह समझ में नहीं आता क्योंकि आपकी महिमा तो बहुत अधिक है और मेरी बुद्धि तो छोटी सी है। **'रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी'** - मेरी स्तुति तो ऐसे ही होगी जैसे जुगनू सूर्य के सामने प्रकाश करने की कोशिश करे। लेकिन फिर भी मुनि स्तुति करते हैं।

'श्याम तामरस दाम शरीर' - हे भगवान्! आपका शरीर श्याम कमल की माला के समान तेजोमय है, सिर पर जटामुकुट धारण किये हुए हैं और वल्कल वस्त्र पहने हैं। हाथों में धनुष बाण है और कमर में तरकस बँधा है। ऐसे श्री भगवान् राम जी को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। **'मोह विपिन घन दहन कृशानुः'** - आप मोह रूपी घने वन का नाश करने के लिये अग्नि क़े समान

हैं, तथा संतों के समूह रूपी कमल वन को प्रफुल्लित करने वाले हैं। निशाचरों रूपी हाथियों के समूह को मात देने के लिये सिंह के समान हैं और भव रूपी पक्षी को मारने के लिये आप बाजरूप हैं; ऐसे प्रभु आप मेरी सदा रक्षा करें।

'अरुण नयन' - आपके नेत्र लाल कमल के समान सुन्दर हैं और आपका सुन्दर वेष है। सीता जी के नेत्ररूपी चकोर के लिये आप चन्द्रमा के समान हैं। और शङ्कर जी के हृदयरूपी मानसरोवर में निरंतर विचरण करने वाले राजहंस के समान हैं। ऐसे विशाल हृदय और विशाल भुजाओं वाले भगवान् श्री राम जी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

'संशय सर्प ग्रसन उरगादः' - आप जीव के संशय रूपी सर्पों को ग्रसने के लिये गरुड़ के समान हैं। माने परमात्मा की उपलब्धि हृदय में हो जाये, तो फिर काहे का संशय? हे भगवान्! आपके हृदय में प्रकट हो जाने से सारे तर्क-कुतर्क भी मिट जाते हैं – सारा विषाद समाप्त हो जाता है। जीव का संसार मिट जाता है। आप देवताओं के समूह को आनन्द देने वाले हैं। **'त्रातु सदा नो कृपा वरूथः'** - हे कृपा के समूह श्री राम जी ! आप सदा मेरी रक्षा करते रहें।

'निर्गुण सगुण विषम सम रूपं' - आप निर्गुण भी हैं और सगुण भी हैं, और आप **'सम'** होने के साथ-साथ **'विषम'** भी हैं। माने सर्वाधिष्ठान होकर सर्वत्र एक समान चैतन्य के रूप में विद्यमान होने के कारण तो आप **'सम'** हैं और फिर भी अपने भक्तों को आनन्द प्रदान करते हैं, तो ऐसा लगता है कि आप **'विषम'** हैं। आप ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत हैं। आप निर्मल हैं, सम्पूर्ण दोष रहित हैं, अनन्त हैं। हे पृथ्वी का भार उतारने वाले भगवान्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

'भक्त कल्पपादप आरामः' – भक्तों के लिये आप कल्पवृक्ष के बाग हैं। क्रोध, मद, लोभ आदि मानसिक विकार आपके स्मरण से दूर हो जाते हैं। आप ज्ञान-निधान हैं और संसारसागर से उद्धार करने वाले हैं। हे सूर्यवंश की ध्वजा, भगवान् श्री राम जी! आप सदा मेरी रक्षा करें। **'अतुलित भुज प्रताप'** – आप अतुलनीय शक्ति सम्पन्न हैं। कलियुग के मल समूह को आपका केवल नाम ही दूर कर देता है। **'धर्म वर्म'** – आप एक कवच के समान धर्म की रक्षा करने वाले हैं। और आपके गुण समूह सबको सुख देने वाले हैं। हे भगवान्! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप निरंतर मेरा कल्याण करते रहें।

'जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी' – वैसे तो आप सर्वव्यापक होने के कारण सबके हृदय में सदा ही निर्विकार होकर सच्चिदानंद स्वरूप से विद्यमान हैं लेकिन फिर भी, हे खरारि! भगवान् श्री राम जी! मेरे मन रूपी वन में आप सीता जी और लक्ष्मण जी सहित इसी वनवासी रूप में वास कीजिये, जिससे कि इस वन के निशाचर समाप्त हो जायें। आपको जो लोग; सगुण, निर्गुण और अन्तर्यामी जैसा जानते हों, वैसा जानते रहें लेकिन मेरे हृदय में तो अयोध्यापति कमलनयन भगवान् श्री राम ही वास करें। मेरे हृदय में सदा यह अभिमान बना रहे कि आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ।

भगवान् मुनि की इस प्रकार की प्रार्थना सुनकर मन में बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने हर्षित होकर मुनिश्रेष्ठ को, फिर से अपने हृदय से लगा लिया। भगवान् बोले कि हे मुनि! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, अब तुम जो भी वरदान माँगोगे, मैं तुमको दूँगा। सुतीक्ष्ण मुनि बोले कि हे भगवान्! मुझे तो वरदान माँगना आता

ही नहीं है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या माँगू और क्या नहीं? इसलिये हे दासों को सुख देने वाले भगवान्! जो कुछ **'तुम्हहि नीक लागै'** - आपको जो अच्छा लगे, वही आप मुझे दे दीजिये।

भगवान् ने कहा – हे मुनि! तुम्हारे हृदय में अविरल भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, विज्ञान और समस्त गुण भी आ जायें। तुम ज्ञाननिधान बन जाओ। तब सुतीक्ष्ण मुनि बोले कि हे भगवान्! आपने जो वरदान मुझे दिया, वह तो मुझे मिल ही गया, अब मुझे जो अच्छा लग रहा है वह वरदान दीजिये।

'अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम' - हे भगवन! आप धनुष बाण धारण किये हुए, इसी वनवासी रूप में, लक्ष्मण जी और सीता जी सहित स्थिर होकर; मेरे हृदयाकाश में चन्द्रमा की भाँति सदा निवास कीजिये। मुझे आपका विस्मरण कभी ना हो – सदा आपके दर्शन, मेरे हृदय में होते ही रहें।

इस स्तुति से ज्ञात होता है कि ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आ जाना तो बहुत बड़ी बात है ही, लेकिन उससे भी बड़ी बात है कि भगवान् सदा हृदय में वास करें, उनका विस्मरण कभी ना हो।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - श्रीरामचरितमानस में यह ग्यारहवीं स्तुति है और आकाश स्थित नक्षत्र मण्डल में ग्यारहवाँ नक्षत्र पूर्वा फाल्गुनी है। यह इस स्तुति एवं पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र का अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - ग्यारहवें नक्षत्र का नाम पूर्वा फाल्गुनी है। फल्गु = सारहीन, एवं पूर्वा माने पहला। देखते हैं कि इस स्तुति

में सुतीक्ष्णजी कहते हैं कि हे स्वामी! आपको जो सगुण, निर्गुण और अन्तर्यामी जानते हों, वे जाना करें, मेरे हृदय को तो कोशलपति कमलनयन श्रीरामजी (सगुणरूप श्रीरामजी) ही अपना घर बनावें। अर्थात् सुतीक्ष्णजी सगुणरूप को प्राधान्य देकर **पूर्वरूप (निर्गुणरूप) को फल्गु (असार) बता रहे हैं;** इस प्रकार से इस स्तुति और पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र के बीच नाम के आधार पर साम्य सिद्ध हुआ।

३. आकार-रूप साम्य - पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे और उत्तरा फाल्गुनी के दो तारे मिलकर आकार एक चारपाई के समान है। माने दोनों नक्षत्रों के दो-दो तारे जोड़ देने से लम्बचतुरस्र आकार बनता है। अर्थात् दोनों नक्षत्रों के आकार में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी प्रकार देखते हैं कि ग्यारहवीं स्तुति के कर्ता सुतीक्ष्णमुनि और बारहवीं स्तुति के कर्ता अगस्त्य ऋषि में भी शिष्य और गुरुका परम पवित्र सम्बन्ध है। स्तुति के बाद सुतीक्ष्णजी गुरु के पास जाते भी हैं। जिस प्रकार से दोनों नक्षत्रों के तारे आकार में परस्पर सम्बन्धित हैं, उसी प्रकार से अगस्त्य ऋषि द्वारा स्तुति की जाने के समय सुतीक्ष्णजी वहाँ पर उपस्थित भी हैं। यह आकार की दृष्टि से साम्य सिद्ध होता है।

४. तारे संख्या साम्य - पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में दो तारे हैं, इसी प्रकार से इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भी महिमा और रूप - ये दो तारे हैं जो रह-रह कर चमक रहे हैं।

५. देवता साम्य - पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र के देवता 'अर्यमा' हैं। अर्यमा = सूर्य। देखते हैं कि इस स्तुति में भगवान् श्रीराम को एक बार 'रबि' और फिर 'संत सरोरुह कानन भानुः' के रूप में तो स्पष्ट ही 'सूर्य' कहा है, और अन्यत्र भी इसी स्तुति में 'दिनकर कुल केतुः' सम्बोधित किया है। इस प्रकार देखते हैं कि

'अर्यमा' देवता ही इस स्तुतिनक्षत्र के देवता सिद्ध हुए। यह देवता के आधार पर साम्य हो गया।

६. **पुरुषार्थ साम्य** – पूर्वा फाल्गुनी **'काम'** पुरुषार्थ का नक्षत्र है। देखते हैं कि इस स्तुति में भगवान् को 'भक्त कल्पपादप आरामः' अर्थात् भक्तों की समस्त कामनाएँ पूर्ण करने के लिये कल्पवृक्ष के बगीचे के समान बताया गया है। इस स्तुति में भगवान् ने पहले तो सुतीक्ष्णजी को प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुण तथा ज्ञान के निधान बनने का वरदान प्रदान किया, और फिर सुतीक्ष्ण जी के माँगने पर, उन्हें यह वरदान भी प्रदान कर दिया कि 'भगवान् सदा-सदा उनके हृदय में वास करें, उनका विस्मरण कभी ना होने पाये।' सुतीक्ष्णजी का 'काम' परमार्थ से जुड़ा हुआ है, और इस स्तुति के द्वारा सुतीक्ष्णजी की समस्त श्रेय मनोकामनाएँ पूर्ण हो गयीं हैं। इस प्रकार यह इस स्तुति का **'काम'** पुरुषार्थ से सम्बन्ध हुआ, और साथ ही पुरुषार्थ की दृष्टि से पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच साम्य सिद्ध हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - १२

कुंभजमुनिकृत स्तुति (अरण्यकाण्ड) - उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र

मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी।।
तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी। जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी।।
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया।।
जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना।।
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भयँ डरत सदा सोउ काला।।
ते तुम्ह सकल लोकपति साईं। पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं।।
यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता।।
अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा।।
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता।
अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ।।
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूँछेहु रघुराई।।
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ।।
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू।।
बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया।।

- दो० १३ के अन्तर्भूत चौ०

अर्थ सहित व्याख्या –

भगवान् की रहस्यमयी बात को सुनकर अगस्त्य मुनि मुसकराये और बोले **'पूछेहु नाथ मोहि का जानी'** -हे नाथ! आपने मुझे क्या समझकर यह प्रश्न किया है? हे पापों का नाश करने

वाले ! मैं तो **'तुम्हरेइँ भजन प्रभाव'** - आपके ही भजन के प्रभाव से आपकी महिमा को थोड़ा बहुत जान पाया हूँ, वरना आपकी महिमा तो अनन्त है।

'ऊमरि तरु बिसाल तव माया' - आप तो बस आप ही हैं — मैं आपकी माया की महिमा कहता हूँ। आपकी माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है।[१] और जैसे गूलर के पेड़ में अनगिनत फल लगते हैं — ऐसे आपकी माया के अन्दर अगणित ब्रह्माण्ड हैं। गूलर के फल के भीतर के भुनभुनों के समान इन ब्रह्माण्डों में रहने वाले चराचर जीव हैं, वे बिचारे अपने छोटे से ब्रह्माण्ड से बाहर की दुनिया क्या जानें?

'ते फल भच्छक कठिन कराला' - उन सब फल रूपी ब्रह्माण्डों को यह कराल काल खा जाता है, माने कालांतर में ये सब ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाते हैं — ऐसा काल भी आपसे डरता है। आप उन समस्त लोकपालों के स्वामी होकर भी एक साधारण मनुष्य की भाँति मुझसे प्रश्न पूछ रहे हो।

इस प्रकार मुनि ने परमात्मा की महिमा को समझने के लिये एक दृष्टि दी कि उसकी महिमा को देखो कि उसकी माया द्वारा रचित अगणित ब्रह्माण्डों में से एक ब्रह्माण्ड में, पृथ्वी के एक भाग में हम रहते हैं और यह सारी सृष्टि मायामय है। इस झूठी माया को लेकर कोई व्यक्ति अभिमान करे, तो उसका क्या महत्त्व है?

---

१. इस प्रसङ्ग में गूलर के वृक्ष का द्रष्टान्त आया है हमारे शास्त्रों में कई प्रकार के वृक्षों के उदाहरण से सृष्टि रचना के बारे में बताया गया है। गूलर का वृक्ष **'ब्रह्मवृक्ष'** कहलाता है — कि ब्रह्मा जी ने माया के द्वारा ब्रह्माण्डों की रचना की। गीता में अश्वत्थ वृक्ष का द्रष्टान्त है, वह **'कर्मवृक्ष'** है।

अगस्त्य ऋषि की प्रार्थना सुनकर भगवान् कुछ प्रसन्न दिखाई दिये तो अगस्त्य ऋषि कहते हैं – हे कृपानिधान भगवान्! मैं आपसे यह वरदान माँगता हूँ कि आप श्री सीता जी और लक्ष्मण जी सहित मेरे हृदय में सदा वास करें। **'अबिरल भगति बिरति सतसंगा'** - आप मुझे अपनी अविरल भक्ति, वैराग्य और सत्सङ्ग प्रदान करें और मुझे आपके चरण कमलों में अटूट प्रेम प्राप्त हो।

'जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता' - यद्यपि आप अखण्ड और अनन्त ब्रह्म हैं, जो अनुभव से ही जाने जाते हैं और संतलोग जिनका भजन करते रहते हैं। आपके इस निर्गुण रूप को मैं जानता हूँ और अन्य लोगों के सामने उसका वर्णन भी करता रहता हूँ; लेकिन फिर भी मेरे मन में सगुण ब्रह्म का प्रेम बार-बार उभर कर ऊपर आता रहता है।

इससे ज्ञात होता है कि ब्रह्म तो एक ही है; उपनिषदों के द्वारा निर्गुण ब्रह्म के रूप में उसे जानना चाहिए लेकिन शरीर, मन, बुद्धि को पूजा करने के लिये वह सगुण रूप में उपलब्ध होता है। इस प्रकार से कोई, दो-दो ब्रह्म नहीं हैं।

अगस्त्य ऋषि भगवान् की महिमा का वर्णन करने के बाद अब भगवान् की बात का उत्तर देते हैं। वे कहते हैं कि आपने जो मुझसे पूछा है, उसका कारण तो यह है कि आप मुझे बड़ाई देने के लिये यह सब पूछ रहे हैं। (साधकों के लिये सङ्केत है कि सदा दूसरों के कार्यों को महत्व देते हुए उनकी बड़ाई करनी चाहिए। यही भक्त का लक्षण है) लेकिन आगे अगस्त्य ऋषि बताते भी हैं। कि **'है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ'** - हे प्रभु! एक बहुत ही पवित्र स्थान है उसका नाम पञ्चवटी है, आप वहाँ जाकर निवास कीजिये और दण्डकवन, जो कि राजा दण्ड के राज्य में था और

शुक्राचार्य मुनि के श्राप के कारण अपवित्र हो गया था, कृपया उस कठोर श्राप को हरकर, उस वन को पवित्र कीजिये और इस प्रकार से सब मुनियों पर दया कीजिये।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - श्रीरामचरितमानस में यह बारहवीं स्तुति है और आकाश स्थित नक्षत्र मण्डल में बारहवाँ नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनी है। यह अनुक्रम की दृष्टि से साम्य हुआ।

२. नाम साम्य - बारहवें नक्षत्र का नाम उत्तरा फाल्गुनी है, और देखते हैं कि इस स्तुति में, गूलर के फलों की उपमा के द्वारा, मायाजनित ब्रह्माण्डों का अत्यन्त फल्गुत्व (मिथ्यात्व) दिखाया गया है। निर्गुण ब्रह्म जैसे सगुण ब्रह्म का पूर्वरूप है, इसी प्रकारसे 'ब्रह्माण्ड' सगुण ब्रह्म का उत्तररूप है। **उत्तररूप (ब्रह्माण्ड) का फल्गुत्व इस स्तुति ने दिखाया, इसलिये यह स्तुति उत्तरा फाल्गुनी है।** यह नाम की दृष्टि से साम्य हो गया।

३. आकार-रूप साम्य - 'द्वन्द्व द्वयेनोत्तरयोस्तु शय्या' (रत्नमाला ग्रन्थ) पूर्वा फाल्गुनी के दो तारे और उत्तरा फाल्गुनी के दो तारे मिलकर इन चार तारों का शय्या के समान लम्ब चतुरस्र आकार होता है। इसी प्रकार से पूर्वा स्तुति के महिमा और रूप नामक दो तारे और उत्तरा फाल्गुनी स्तुति के निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म रूपी दो तारे; इन चारों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है ही। जैसे आकाश में पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र पास-पास नजर आते हैं, इसी प्रकार से श्रीरामचरितमानस में ये दोनों स्तुतियाँ पास-पास ही हैं। यह नक्षत्र और स्तुति में आकार-रूप साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य - उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में दो तारे हैं, और उसीप्रकार से इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भी 'ब्रह्म अखंड अनंता' अर्थात् निर्गुण निराकार ब्रह्म पहला तारा, तथा जिनको 'बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता' कहा; वे 'रघुराई'= सगुण साकार ब्रह्म, दूसरा तारा हैं। इस प्रकार तारे संख्या के आधार पर साम्य हो गया।

५. देवता साम्य - उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का देवता 'भग' हैं। भग = ऐश्वर्य या भाग्य। देखते हैं कि इस स्तुति में भगवान् श्रीराम को 'तुम्ह सकल लोकपति साईं' कहकर सम्बोधित किया है और यह भी वर्णन है कि 'तव भयँ डरत सदा सोउ काला'। यह सब भगवान् श्रीरामजी के ऐश्वर्य का वर्णन है। इसके अतिरिक्त स्तुति में ही अगस्त्य ऋषि कहते हैं कि 'आप सेवकों को सदा ही बड़ाई दिया करते हैं, इसीलिये हे रघुनाथजी ! आपने मुझसे पूछा है।' तात्पर्य यह हुआ कि इस स्तुति में भगवान् ने अगस्त्यजी को सौभाग्य प्रदान किया है। इस प्रकार दोनों अर्थों (ऐश्वर्य और भाग्य) से 'भग' देवता ही इस स्तुति के देवता सिद्ध हुए। यह देवता के आधार पर साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य - उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र **'मोक्ष'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। इस स्तुति-नक्षत्र में अगस्त्यजी भगवान् से कहते हैं कि आप कृपया गौतम ऋषि के शाप से ग्रस्त दंडक वन को शाप से मुक्ति प्रदान कीजिये, और देखते हैं कि इस स्तुति के फलस्वरूप दंडक वन शाप से **'मुक्त'** होकर पवित्र हो भी गया। यह इस नक्षत्र और स्तुति में पुरुषार्थ साम्य हुआ।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - १३

जटायुकृत स्तुति (अरण्यकाण्ड) - हस्त नक्षत्र

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।।
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी।।

छं० - जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही।।
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं।। १ ।।
बलमप्रमेयमनादिमजमब्यक्तमेकमगोचरं ।
गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं।।
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं।। २ ।।
जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं।।
सो प्रगट करुना कंद सोभा बृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई।। ३ ।।
जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा।।
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी।। ४ ।।

दो० - अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम।।३२।।

अर्थ सहित व्याख्या –

अब जटायु ने गीध का शरीर छोड़ दिया और उसने भगवान् के जैसा शरीर धारण कर लिया। भगवान् विष्णु की तरह दिव्य आभूषण और पीताम्बर पहन लिये। श्याम शरीर और चार भुजाएँ हैं। देखते हैं कि भक्ति शास्त्र में चार प्रकार की मुक्ति का वर्णन है – सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। ये चारों इसी क्रम से हैं। जटायु को **सारूप्य मुक्ति** प्राप्त हो गयी। इसके माने इन्हें इससे नीचे वाली दोनों मुक्तियाँ (सालोक्य और सामीप्य) तो सहज प्राप्त हैं ही। ये भगवान् से एकीकृत नहीं होते, माने मुक्त होकर भी भक्ति के भाव में रहते हुए भगवान् के निकट तद्रूप होकर रहते हैं। लेकिन ये मुक्त ही हैं – बंधन कोई नहीं। जैसे वेदान्त के अनुसार जीवन मुक्ति हो जाती है, तो व्यक्ति मानवीय शरीर लिये हुए भी मुक्त हो जाता है; इसी प्रकार भगवान् का रूप धारण करके भी ये मुक्त हैं।

भगवान् नारायण का रूप धारण करके जटायु बड़े प्रेम के साथ, नेत्रों में प्रेमाश्रु लिये हुए भगवान् राम की स्तुति करने लगे। (स्तुति में भगवान् के स्वरूप का वर्णन आता है, इसीलिये स्तुति करते समय तद्रूप भगवान् का ध्यान आता है जिससे पाप नष्ट होते हैं) जटायु कहते हैं **'जय राम रूप अनूप'** - हे राम जी! आपका रूप अनुपम है। आप निर्गुण भी हो और सगुण भी हो, साथ ही त्रिगुणात्मक माया के प्रेरक भी हो। आप दससिर वाले रावण की प्रचण्ड भुजाओं को काट गिराने के लिये धनुष बाण धारण किये हुए हैं। पृथ्वी को सुशोभित करने वाले हैं।

आध्यात्म की दृष्टि से कहें तो रावण मोह का प्रतीक है। एक ओर तो परब्रह्म परमात्मा अपनी माया के द्वारा जगत् की रचना करता है और दूसरी ओर, परमात्मा ज्ञान स्वरूप होने के कारण, हमारे मोह का विनाश भी करता है।

जटायु स्तुति करते हुए आगे कहते हैं कि आपका शरीर मेघ के समान श्याम वर्ण है। आप कमल के समान मुख और लाल कमल के समान विशाल नेत्रों वाले हैं। विशाल भुजाओं वाले और भव-भय (जीव के राग-द्वेष द्वारा स्वनिर्मित बंधन युक्त संसार) से छुड़ाने वाले कृपालु भगवान् श्री राम जी को मैं प्रणाम करता हूँ। **'बलमप्रमेयमनादिमजमब्यक्तमेकमगोचरं'** - आप अनन्त बलशाली हैं, स्वयं अपनी सत्ता से सदा से विद्यमान हैं, जन्मरहित हैं, निराकार हैं, एक और अखण्ड हैं — माने नानात्व तो माया में है, आप मायातीत हैं; इन्द्रियों से अतीत हैं।

'गोबिंद गोपर द्वंद्वहर' - आप इन्द्रियों को प्रकाशित करने वाले हैं, इन्द्रियों से अग्राह्य हैं और द्वन्द्वों (राग-द्वेष, सुख-दुख आदि) का हरण करने वाले हैं। जो संत आपका नाम जपते हैं, उनके हृदय में आप दुःखों को नष्ट करके, सुख का सञ्चार करने वाले हैं। हे राम जी! मैं बार-बार आपको प्रणाम करता हूँ। आपको अकाम लोग प्रिय हैं। **'कामादि खल दल गंजनं'** - आप काम, क्रोध आदि दुष्टों के समूह को नष्ट करने वाले हैं। यहाँ स्पष्ट कर दिया कि **खल कोई मनुष्य नहीं होता वरन् उसके भीतर बैठे मानसिक विकार खल होते हैं**, और भगवान् उन मनोविकार रूपी निशाचरों को मारते हैं।

'जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक अज कहि गावहीं' - श्रुतियों में जिन भगवान् की महिमा बार-बार इस प्रकार गायी जाती है कि वह निरंजन है, ब्रह्म है, व्यापक है, मलिनतारहित,

जन्मरहित है। साधक लोग वेदों के द्वारा उसी परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करते हैं और फिर उसी के अनुसार आपका ध्यान भी करते हैं। और फिर संसार से विरक्त होकर आपको प्राप्त करते हैं; वे करुणा की वर्षा करने वाले, शोभा की राशि भगवान् अवतार लेकर प्रकट हुए, तो सारी चराचर सृष्टि आपके सुन्दर स्वरूप को देखकर प्रेम में मग्न (मोहित) हो जाती है। ऐसे भगवान् मेरे हृदय कमल में भ्रमर बन कर वास करें, जिनके कि अङ्ग-अङ्ग में अनेकों कामदेवों की छवि शोभा पा रही है।

'जो अगम सुगम सुभाव निर्मल' - संसारी लोगों के लिये तो भगवान् को प्राप्त करना बड़ा कठिन (अगम) है परन्तु जो विषयों से विरक्त हैं उनके लिये भगवान् को प्राप्त करना सुगम है। भगवान् का स्वभाव निर्मल है। वे सम भी हैं असम भी हैं। माने सब पर एक समान कृपा करने वाले हैं लेकिन जो भगवान् के भक्त हैं वे भगवान् की कृपा प्राप्त कर लेते हैं और जो विषयाभिमुख हैं वे आपकी कृपा प्राप्त नहीं कर पाते। माने **भगवान् तो सम हैं लेकिन जीवों की विषमता के कारण से ऐसा लगता है कि भगवान् असम भी हैं।**

भगवान् सदा शान्ति और शीतलता प्रदान करने वाले हैं। **'पस्यंति जं जोगी जतन करि'** - अपने मन और इन्द्रियों पर संयम करके यत्न करने पर योगी लोग भगवान् को अपने हृदय में देखते हैं। माने **भगवान् तो सबके हृदय में हैं लेकिन बिना यत्न किये दिखता नहीं है।** गीता में भी भगवान् कहते हैं —

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।

यत्न करने वाले योगीजन अपने हृदय में स्थित इस आत्मा को तत्त्व से जानते हैं।

'सो राम रमानिवास' - जो भगवान् तीनों लोकों के स्वामी हैं और लक्ष्मी जी के हृदय में सदा वास करते रहते हैं, वे भगवान् भी भक्तों के वश में हैं। जटायु को भगवान् ने मुक्त तो कर दिया लेकिन मुक्ति के बाद भी उन्हें भक्ति चाहिए, इसीलिये वे भगवान् से वरदान माँगते हैं कि हे भगवान्! वही आप मेरे हृदय में वास करिए। आपकी पवित्र कीर्ति आवागमन के चक्र को मिटाने वाली है। इस प्रकार गिद्धराज जटायु ने भगवान् से अविरल भक्ति माँगी (जो भक्ति सदा बनी रहे, कभी नष्ट न हो) और भक्त होकर भगवान् के वैकुण्ठ धाम को चले गये।

भगवान् का धाम ब्रह्मलोक से भी ऊँचा है और लोकातीत है, वहाँ माया की सृष्टि नहीं है। वह सब भगवान् का ही विग्रह है वहाँ भगवान्, भक्त जो भी वास करते हैं - सब कुछ भगवद्स्वरूप है। लेकिन इसमें अलग-अलग अवस्थितियाँ हैं। एक गोलोक धाम है, कैलाश धाम है, एक साकेत धाम है। जटायु भगवान् के धाम में पहुँचे तो भगवान् वहाँ विराजमान हैं। ये भी वहाँ पहुँचकर भगवान् का रूप धारण करके वास करने लगे।

यहाँ पृथ्वी पर जटायु का मृत शरीर पड़ा रह गया। लेकिन फिर भगवान् ने जटायु का यथायोग्य क्रियाकर्म अपने हाथ से किया।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में तेरहवाँ नक्षत्र 'हस्त' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह तेरहवीं स्तुति है। यह अनुक्रम की दृष्टि से साम्य हुआ।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम 'हस्त' है, और देखते

हैं कि भगवान् श्रीरामजी का कर (हस्त) इस स्तुति के उपक्रम में तो 'कर सरोज सिर परसेउ' के रूप में, तथा उपसंहार में 'निज कर कीन्ही राम' है, के रूप में स्तुति को आवृत्त किये हुए है; इस प्रकार से स्तुति और नक्षत्र में नाम की दृष्टि से साम्य सिद्ध हो गया।

३. आकार-रूप साम्य - हस्त नक्षत्र का आकार मनुष्य के हाथ का है और इस स्तुति में भी हाथ की पाँचों अंगुलियों के प्रतीक दिखाई देते हैं - एकमेवाद्वितीय **निर्गुण ब्रह्म = अंगूठा**, यह स्तुति के प्रत्येक छंद में प्रथम ही चमकता है। महिमा अथवा प्रताप बताने से शत्रु को धाक पड़ती है, इसलिये डाँट बताने में तर्जनी का उपयोग किया जाता है, अतः **महिमा = तर्जनी अंगुली**। स्तुति में सगुणरूप सबसे अधिक महत्व का है, और इधर मध्यमा अंगुलि भी सबसे बड़ी होती है, इसलिये जिसकी महिमा है, वह **सगुणरूप = मध्यमा अंगुलि**। भगवान् का मूलरूप तो अनाम है, परन्तु सगुणरूप के साथ ही नाम का सम्बन्ध होता है, इसलिये **नाम = अनामिका अंगुलि**। देखते हैं कि नाम के साथ ही गुण होते हैं, इसलिये **गुण = कनिष्ठिका** अंगुलि। इस प्रकार हस्त नक्षत्र और इस स्तुति के मध्य आकार-रूप की दृष्टि से साम्य सिद्ध होता है।

४. तारे संख्या साम्य - हस्त नक्षत्र में पाँच तारे हैं, और इस स्तुति के प्रत्येक छंद में निर्गुणरूप, सगुणरूप, नाम, गुण और महिमा रूपी पाँचों तारे बार-बार चमक रहे हैं। इस प्रकार यहाँ पर हस्त नक्षत्र एवं इस स्तुति में तारों की संख्या की दृष्टि से साम्य सिद्ध होता है।

५. देवता साम्य - हस्त नक्षत्र का देवता 'सावित्र' है, जो कि **सूर्य की ही सृजनात्मक शक्ति** का नाम है; इधर इस स्तुति के

मूल में भी 'राम सच्चिदानन्द दिनेसा' अर्थात् भगवान् राम रूपी सूर्य की सृजनात्मक शक्ति (उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं) माता सीता हैं। उन्हीं को रावण से बचाने के प्रयत्न में जटायु ने प्राणों का त्याग किया, और भगवान् की कृपा से सारूप्य मुक्ति पायी है; तथा अब यह स्तुति कर रहे हैं। इस प्रकार से यहाँ पर हस्त नक्षत्र और इस स्तुति में देवता की दृष्टि से साम्य सिद्ध हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य – हस्त नक्षत्र **मोक्ष** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। देखते हैं कि इस स्तुति के पश्चात् 'गीध गयउ हरिधाम' माने जटायु को 'सालोक्य' **मुक्ति** प्राप्त हो गयी। इसलिये यह स्तुति भी मोक्ष पुरुषार्थ से सम्बन्धित है।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - १४

हनुमान्‌जीकृत स्तुति (किष्किन्धाकाण्ड) - चित्रा नक्षत्र

पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही।।
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं।।
तव माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना।।

दो० - एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान।। २ ।।

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें।।
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा।।
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई।।
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें।।
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।।

अर्थ सहित व्याख्या -

हनुमान्‌जी भगवान् के सुन्दर स्वरूप को चित्रलिखित से देखते ही देखते रह गये। भगवान् का ऐश्वर्य और माधुर्य तो हनुमान्‌जी को पहले ही नजर आ रहा था लेकिन अब यह पहिचान कर कि ये तो मेरे ही स्वामी हैं, उन्हें भगवान् की भगवत्ता बिल्कुल स्पष्ट दिखने लगी।

'पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही' - हनुमान्‌जी ने फिर धैर्य धारण किया। माना प्रेम के कारण जो भावावेश हो गया था वह थोड़ा शमित हुआ - अब उनकी बुद्धि काम करने लगी

और फिर वे भगवान् की स्तुति करने लगते हैं। यह पहचान कर हनुमान्‌जी के हृदय में हर्ष है कि ये हमारे ही स्वामी हैं जिनका नाम हम सदा जपा करते हैं - ये परब्रह्म परमात्मा हैं। ऐसा भाव हृदय में रखते हुए अपने स्वामी की स्तुति जैसे की जाती है, वैसे ही करने लगे।

'मोर न्याउ मैं पूछा साईं' - हनुमान्‌जी स्तुति में कहते हैं कि हमने आपका परिचय पूछा तो यह तो न्यायसङ्गत बात थी क्योंकि हम आपको पहिचान नहीं पाये लेकिन क्या आप हमको नहीं पहचानते, जो हमसे परिचय पूछते हैं? आप तो हमारे स्वामी हो, आप तो पहिचानते ही हैं फिर आपको मनुष्य की तरह से परिचय पूछने की क्या बात है?

'तव माया बस फिरउँ भुलाना' - हम तो माया के वश में भूले फिर रहे हैं इसलिये हमने आपको नहीं पहचाना। माने जीव तो माया के आधीन है इसलिये वह तो माया के आवरण के कारण भगवान् को नहीं देख पाता लेकिन क्या भगवान् नहीं जान पाता कि जीव की क्या स्थिति है? भगवान् पर कोई माया का आवरण थोड़े ही है। वे तो ज्ञाननिधान हैं और सर्वज्ञ हैं, सर्वनियंता हैं, सर्वान्तर्यामी हैं - इसलिये भगवान् तो सब जानते ही हैं कि कौन, कहाँ, क्या है? सो आपसे तो कुछ छिपा नहीं कि मैं कौन हूँ?

इसके सम्बन्ध में पुराणों में एक अन्तर्कथा और आती है कि जब भगवान् बालरूप में थे तो उन्होंने कहीं बगीचे में वानर देखा, तो वे अपने खेलने के लिये एक वानर के लिये मचलने लगे। महाराज दशरथ ने वानर पकड़कर मँगवाये लेकिन भगवान् को कोई भी वानर पसंद ही नहीं आया और वे वानर

के लिये मचलते ही रहे। तब वसिष्ठजी से पूछा गया कि क्या किया जाये? वसिष्ठजी ने बताया कि अञ्जनी के पुत्र आञ्जनेय को लाओ, वह इनको पसंद आ जायेगा। तब हनुमान्जी को लाया गया - उन्होंने आते ही बड़े सौम्य भाव से भगवान् को प्रणाम किया, बड़े प्रेम के साथ उनके साथ बैठे। भगवान् राम बड़े प्रसन्न हो गये, तो फिर हनुमान्जी बाल्यकाल में भगवान् राम के साथ अयोध्या में कुछ दिन रहे। बाद में जब भगवान् विश्वामित्रजी के साथ जाने लगे, तब उन्होंने हनुमान्जी से कहा कि अब तुम अपने माता-पिता के पास जाओ बाद में हमें दक्षिण में मिलना, जब हम वहाँ आयेंगे।

'एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान' - हनुमान्जी कहते हैं कि मैं तो एक ऐसा जीव हूँ जो मंद बुद्धि का है और माया के कारण मोह में पड़ा हुआ है और कुटिल बुद्धि का हूँ (जो आपके आगे विप्र बन कर आया), अज्ञान से ग्रसित हूँ, लेकिन हे प्रभु दीन बन्धु भगवान्! आपने भी मुझे भुला दिया जो आप मुझसे परिचय पूछ रहे हैं? हनुमान्जी ने इस प्रकार से कह कर अपना मानो परिचय दे दिया कि हम भी आपके भक्त शङ्कर हैं! आपका निरन्तर स्मरण करते रहते हैं।

इस प्रकार से मानो इस प्रसंग में तुलसीदासजी का मन्तव्य यह है कि यदि जीव भगवान् से प्रार्थना करता है, पूजा आराधना करता है और उसे भगवान् नेत्रों से न दिखाई दें - मन-बुद्धि से समझ में न आवे - तो उसे समझ लेना चाहिए कि वह माया के आधीन है, इसके कारण से वह परमात्मा को नहीं जानता। लेकिन वो यह न समझे कि हम भगवान् से प्रार्थना कर रहे हैं, उनकी पूजा उपासना कर रहे हैं, तो वह भगवान् भी हमको नहीं देख रहा है; वह भी हमें नहीं

जानता। भगवान् तो सबके हृदय में वास करते हैं और सबके हृदय की गति को जानने वाले हैं।

हनुमान्‌जी भगवान् की स्तुति करते हुए आगे और बोलते हैं - इसी प्रसङ्ग के विषय में एक जगह यह भी आता है कि हनुमान्‌जी से जब भगवान् राम ने परिचय पूछा तो हनुमान्‌जी ने अपने तीन परिचय बता दिये। पहला तो यह कि आप यदि पुरुषरूप धारण किये हुए भगवान् राम हो, तो मैं भी शरीर से हनुमान् नाम का आपका सेवक हूँ और जीव भाव से यदि देखें तो यद्यपि हम माया के वश में हैं लेकिन आप अंशी हैं और हम आपके अंश हैं। और तीसरा परिचय एक और है कि जीव का वास्तविक स्वरूप तो आत्मा है, तो आत्मा की दृष्टि से परमात्मा से अंश अंशी सम्बन्ध नहीं है - वहाँ तो अनन्यता का सम्बन्ध है, जो आत्मा है वही परमात्मा है। यहाँ पर देखते हैं कि हनुमान्‌जी भगवान् की वन्दना करते हैं, उनकी महिमा गाते हैं, तो इसी विधि से अपना परिचय भी हो जाता है।

'जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें' - हनुमान्‌जी कहते हैं कि हे भगवन्! हम तो आपके सेवक हैं और यद्यपि हमारे अन्दर बहुत से दुर्गुण हैं लेकिन आप तो हमारे स्वामी हैं - यह बात आप भुलावें नहीं। हमारे दुर्गुणों को आप क्षमा करते रहें। **'नाथ जीव तव मायाँ मोहा'** - यहाँ पर एक प्रकार का उपालम्भ भी है कि हे भगवन्! जीव करे तो क्या करे? आपकी ही माया ने हमको घेरकर मोह में डाल दिया है। इसके माने हैं **'जो बांधे सो छोरै'**- यह भक्तों का एक सिद्धान्त है कि आपकी माया ने हमें बाँधा तो आप ही हमें छुड़ाओ। एक जीव दूसरे जीव को खोल नहीं सकता क्योंकि दरअसल सभी जीव एक-एक देह भाव रूपी खम्भे में बंधे पड़े हैं - वे क्या दूसरे को खोलेंगे?

जब छुड़ाने वाले की बात आती है, तो यह समझो कि वही भगवान् भगवत्ता रूप होकर जीव को छुड़ा देता है और वही परमात्मा माया रूप होकर जीव को बंधन में डाल देता है। वही बात हनुमान्‌जी यहाँ कहते हैं कि हे भगवान्! आपकी माया ने ही जीव को मोह में डाल रखा है। उस जीव का निस्तार कैसे हो? **'सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा'**- जब आप उसके ऊपर कृपा करो।

'ता पर मैं रघुबीर दोहाई' - उस पर भी हे रघुवीर! मैं आपकी शपथ से कहता हूँ कि मैं कोई आध्यात्मिक साधन भी नहीं जानता हूँ। बस, मैं तो इतना जानता हूँ कि मैं आपका सेवक हूँ। जैसे संसार के उदाहरणों में पुत्र अपनी माता के अधीन होता है और जैसे सेवक अपने स्वामी के अधीन रहते हुए चिंता रहित होता है, ऐसे ही आपके भरोसे हम निश्चिंत हैं। आपको तो हमारा पोषण करना ही पड़ेगा! ऐसा कहकर हनुमान्‌जी अकुला कर प्रभु के चरणों में गिर पड़े। **'निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई'** - इसी समय हनुमान्‌जी ने अपना वानर शरीर प्रगट कर दिया, उनके हृदय में भक्ति भाव छा गया।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में चौदहवाँ नक्षत्र 'चित्रा' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह चौदहवीं स्तुति है। यह इस स्तुति का चित्रा नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम चित्रा है, और उसी प्रकार से यह स्तुति विचित्र, चमत्कृति निधान है। हनुमान्‌जी

भगवान्‌ के विचित्र वेष को चित्रलिखित के समान देखते ही रह गये, और तब ही इस स्तुति की उत्पत्ति हुई; इसलिये यह स्तुति भी चित्रा-स्तुति-नक्षत्र है।

३. आकार-रूप साम्य – चित्रा नक्षत्र का आकार एक बड़ी प्रकाशमान्‌ मणि के जैसा है, और इस स्तुति के कर्ता हनुमान्‌जी भी भगवान्‌ श्रीरामजी के लिये अमूल्य मणि के समान हैं। मणि की यह विशेषता होती है कि वह स्वयंप्रकाश होती है, और इस स्तुति के द्वारा हनुमान्‌जी के हृदय का समर्पण भाव एवं उनकी प्रगाढ़ भक्ति स्वयं ही एकदम सहजरूप में प्रकाशित हो रही है। इसप्रकार यह आकार-रूप की दृष्टि से चित्रा नक्षत्र और इस स्तुति में साम्य हो गया।

४. तारे संख्या – चित्रा नक्षत्र में केवल एक ही तारा है, और इस स्तुति में भी जीव को माया से निस्तार दिलाने के एकमात्र उपाय के रूप में 'रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें' भगवान्‌ की शरणागति रूपी एक ही तारा है। इसप्रकारसे यह तारे संख्या की दृष्टि से साम्य हो गया।

५. देवता साम्य – चित्रा नक्षत्र के देवता ब्रह्माण्ड के दिव्य शिल्पी 'त्वष्टाः' है, और इस स्तुति के कर्ता हनुमान्‌जी भी श्रीरामजी के कार्य के त्वष्टा हैं। इस प्रकार चित्रा नक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच यह देवता साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य – चित्राा नक्षत्र **'काम'** नक्षत्र है। ज्योतिष ग्रन्थों के अनुसार चित्रा नक्षत्र में अत्यधिक प्रभावशाली आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं, इसलिये यहाँ पर 'काम' पुरुषार्थ भी पारमार्थिक मार्ग को ही प्रशस्त करता दिखाई देता है। देखते हैं कि इस स्तुति में हनुमान्‌जी ने अत्यंत आर्त विनती के रूप में मुख्यरूप से अपनी

मनोकामना ही प्रकट की है - 'सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें' अर्थात् सेवक अपने स्वामी की विस्मृति में कभी न पड़े, माने आप उसे कभी न भूल जायें। देखते हैं कि यह कामना तो है, लेकिन परमार्थ की कामना है, और इसीलिये कल्याणकारी कामना है। इस प्रकार यह 'काम' पुरुषार्थ से सम्बन्धित स्तुति-नक्षत्र है। यह पुरुषार्थ की दृष्टि से साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - १५

विभीषणकृत स्तुति (सुन्दरकाण्ड) - स्वाति नक्षत्र

पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा।।
सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी।।
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।।
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी।।
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा।।
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं।।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा।।

-दो० ४६ (क) के अन्तर्भूत चौ०

अर्थ सहित व्याख्या -

विभीषण भगवान् की अमृतमयी वाणी सुनकर इतना प्रसन्न हो गये कि वे अघाते नहीं है। विभीषण बार-बार भगवान् के चरण पकड़ते हैं; वे इतने प्रेम से परिभूत हो गये कि उनके हृदय में प्रेम समाता नहीं है।

देखो, विभीषण की कथा जीव की पूरी कथा है। जीव (विभीषण) जब तक देहासक्ति (लङ्का) में रहता है तो मोह (रावण) उसका स्वामी रहता है और उसकी दुर्गति भी होती है। लेकिन वही जीव जब परमात्मा की शरण में जाता है, तो संसार की सब समस्याओं से छूट जाता है और उसे विश्राम, सुख प्राप्त होता है। उसके लिये अब अन्य कुछ भी प्राप्तव्य नहीं बचता।

लेकिन जीव की कथा यहाँ पर ही समाप्त नहीं हो जाती। अब **उसके बाद जीव आत्म भाव, परमात्म भाव को**

रखकर, फिर लौटकर अपने मन-बुद्धि में, शरीर में, जगत् में आवे, लेकिन अनासक्त, निर्लेप भाव से आवे। जीवनमुक्त होकर जीवन जिए। परमात्मा को प्राप्त होने के बाद अब उस जीव का व्यावहारिक जीवन कैसे चलेगा? यह विभीषण की कथा में आगे बताते हैं।

'सुनहु देव सचराचर स्वामी' - विभीषण भगवान् से कहता है कि हे देव! आप तो समस्त चराचर सृष्टि के स्वामी, परमात्मा ही हैं। आप शरणागत के रक्षक हैं, सबके हृदय की बात जानते हैं और सबके अधिष्ठान होकर सबका नियन्त्रण करने वाले हैं। माने सब जड़-चेतन में आपकी ही शक्ति काम कर रही है। मेरे हृदय में पहले तो राज्य सुख, संसार के अन्य सुख भोग इत्यादि की कुछ **'बासना रही'**, परंतु जब मैं आपकी शरण में आया तो आपके प्रेम की धारा की बाढ़ में, आपकी कृपा से, वो सब वासनाएँ (ममता, राग-द्वेषादि विकार) बह गयीं। माने आत्मज्ञानी व्यक्ति वासनाओं के क्षेत्र के पार निकल गया।

'अब कृपाल निज भगति पावनी' - अब तो बस, हे कृपालु! अपनी वही अनअपायनी, पवित्र भक्ति मुझे दीजिये, जो शङ्करजी के मन को सदा प्रिय लगा करती है। भगवान् ने कहा **'एवमस्तु'**- ऐसा ही हो!

भक्ति भी दो प्रकार की कही गयी है एक तो जीव परमात्मा में प्रेम (भक्ति) के बल पर परमात्मा को प्राप्त करता है - लेकिन अभी. यह मानो आश्रय से लटकी हुई भक्ति है, नीचे गिरने का डर है। भक्ति की पूर्णता तो तब है जब परमात्मा जीव को स्वीकार कर ले और अपना करके मान ले; तब जीव की भक्ति स्थिर हो गयी, अब वह गिरने वाला नहीं है। इसलिये भगवान् की शरण में होने के बाद भी विभीषण ने भक्ति ही माँगी, क्योंकि इस भक्ति की भी आवश्यकता थी।

भगवान् ने फिर समुद्र का जल मँगाया और विभीषण से कहा कि हे मित्र! यद्यपि तुम्हारी सब वासनाएँ समाप्त हो गयी हैं, तुम्हारी कोई इच्छा नहीं है तथापि मेरा दर्शन जगत् में निष्फल नहीं जाता! ऐसा कहकर भगवान् श्रीरामजी ने सागर के जल से विभीषण का राजतिलक कर दिया। उसे लङ्का का राजा बना दिया। देवता लोग आकाश से फूलों की अपार वर्षा करने लगे, क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया कि भगवान् ने लङ्का का राज्य विभीषण को दे दिया है, तो अब रावण का वध दूर नहीं है, इसलिये उन्हें बहुत प्रसन्नता हो रही है।

आध्यात्मिक रूप से देखें तो जीव जो पहले मोह के अधीन था, जब भगवान् की शरण में गया, तो भगवान् उसे शरीर, मन, बुद्धि, अहङ्कार आदि का स्वामी बना देते हैं। फिर जीव और भगवान् दोनों मिलकर मोह, अहङ्कार, काम, क्रोधादि विकारों का विनाश करके रामराज्य की स्थापना करते हैं और विभीषणरूपी जीव फिर शरीर में शांति पूर्वक, आनन्द पूर्वक, अचल राज्य करता है।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में पन्द्रहवाँ नक्षत्र 'स्वाति' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह पन्द्रहवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का स्वाति नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम स्वाति (स्व+अति) है, और विभीषण भगवान् श्रीरामजी को अति प्रिय हैं। देखते हैं कि युद्ध के समय जब रावण ने विभीषण के ऊपर भयानक शक्ति से

प्रहार किया तो, 'तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला' भगवान् ने तुरंत ही विभीषण को पीछे कर लिया और सामने होकर वह शक्ति स्वयं सह ली,; इसका कारण भगवान् का विभीषण के प्रति अति प्रेम ही तो था। इस प्रकार स्वाति नक्षत्र और इस स्तुति के बीच नाम की दृष्टि से भी साम्य हो गया।

३. आकाररूप साम्य - स्वाति नक्षत्र का आकार 'मूँगे' के समान है। मूँगा क्रूर ग्रह मंगल का रत्न है, उसी प्रकार से विभीषण भी क्रूर निशाचर रावण के भाई हैं। इस प्रकार से यह स्वाति नक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच, आकार-रूप साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य - स्वाति नक्षत्र में एक ही तारा है, इसी प्रकार से इस स्तुति-नक्षत्र में भी शरणागतिरूपी एक ही तारा है - यह तारे संख्या के आधार पर साम्य हो गया।

५. देवता साम्य - इस नक्षत्र के देवता 'वायु' (पवन) हैं, और पवनपुत्र हनुमान्‌जी की प्रेरणा एवं सहायता से ही यह रत्न (इस स्तुति के करनेवाले विभीषण) सामने आया। इसप्रकार यह स्वाति नक्षत्र से इस स्तुति का देवता साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य - स्वाति नक्षत्र **'अर्थ'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित नक्षत्र है। इस स्तुति में देखते हैं कि विभीषण स्वयं कहते हैं 'उर कछु प्रथम बासना रही' माने इनके मन में **'अर्थ'** के रूप में; लङ्का का राज्य, धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य इत्यादि प्राप्त करने की सूक्ष्म इच्छा विद्यमान थी, जिसे भगवान् श्रीरामजी ने पहचानकर, तुरंत ही समुद्र का नीर मंगवाकर विभीषण का राजतिलक कर दिया। यह इस स्तुति का स्वाति नक्षत्र से पुरुषार्थ सम्बन्धित साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - १६

सर्वदेवकृत स्तुति (लङ्काकाण्ड) - विशाखा नक्षत्र

आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी।।
दीन बंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया।।
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारगगामी।।
तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी।।
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय।।
मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी।।
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो।।
यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही।।
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरें मन बिसमय आवा।।
हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी।।
भव प्रबाहँ संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे।।

दो० - करि बिनती सुर सिद्ध सब रहे जहँ तहँ कर जोरि।

-दो० ११० का पूर्वार्ध

अर्थ सहित व्याख्या -

भगवान् श्रीरामजी और सीताजी बैठे हुए हैं, अब सदा के स्वार्थी देवता लोग आते हैं। देवताओं का स्वार्थ सिद्ध हो गया है; रावण मारा गया है, तो अब वे बड़े प्रसन्न हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् में भी आता है कि इस सृष्टि में चाहे ब्रह्माजी आदि देवता हों, चाहे मनुष्य हों - सभी लोग

'काम हतः' - कामनाओं से ग्रसित हैं और बिना स्वार्थ के कामना हो कैसे सकती है? **'बचन कहहिं जनु परमारथी'** - परमार्थ माने परमात्मभाव में स्थित रहना; और स्वार्थ के माने हैं - जब व्यक्ति को भौतिक विषयों की कामना हो; तो इन देवताओं में भरा हुआ तो स्वार्थ है लेकिन बातें परमार्थ की करते हैं। संसार में बहुत बार व्यक्तियों में बहुत विकार भरे हुए होते हैं, लेकिन वे ऊपर-ऊपर से बड़ी मधुर बातें बोलते हैं। और स्थूल बुद्धि के लोग अक्सर ऐसी ऊपरी-ऊपरी मीठी वाणी बोलने वालों के चक्कर में फँस जाते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि मूल्य तो अन्दर के भावों का होता है, ऊपरी-ऊपरी वाणी का नहीं।

यहाँ तुलसीदासजी का तात्पर्य देवताओं को स्वार्थी कह कर उनकी निन्दा करना नहीं है, वरन् यह बात साधकों की शिक्षा के लिये है। साधक कभी-कभी, जब धर्म के मार्ग पर चलते हैं, तो यद्यपि उनके मन में भौतिक सुख, कीर्ति और स्वर्ग की कामनाएँ रहती हैं लेकिन वे अपने आपको बहुत ऊँचा समझ लेते हैं कि हमारे समान कौन है? लेकिन इनका कामनाएँ करना तो **स्वार्थ** है; और वे बात करें **परमार्थ** की! यही स्थिति बताने के लिये यह सब वर्णन है।

देवता कहते हैं कि **'दीन बंधु दयाल रघुराया'** - हे भगवान् रघुनाथजी! आप तो बड़े दयालु हैं, दीनों के ऊपर कृपा करने वाले हैं। हे परम देव! आपने हम देवताओं के ऊपर बड़ी कृपा की। यह रावण सारे विश्व से द्रोह करने वाला, दुष्ट, कामी और अधर्म के मार्ग पर चलने वाला था। यह अपने पाप के कारण ही विनष्ट हो गया।

यहाँ देखते हैं कि देवताओं की बुद्धि धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य; इसी के चक्कर में पड़ी रहती है। इन्हें ज्ञान है कि

पाप के मार्ग पर चलने वाले का विनाश स्वयं उसके पाप के द्वारा ही हो जाता है, इसलिये देवता लोग अधर्म के मार्ग पर नहीं चलते। और इन्हें इस बात का अभिमान भी है।

'तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी' - देवता कहते हैं कि हे भगवन्! आप तो ब्रह्म हैं, अविनाशी हैं, सदा एकरस, सर्वत्र विद्यमान और सबके लिये एक समान हैं। और आपको कहीं कोई भी आसक्ति नहीं है, आप अखण्ड हैं, तीनों गुणों से परे हैं। आप अजन्मा, पापरहित, निर्विकार, अजेय हैं और आपकी शक्ति अमोघ है। आप दूसरों के दुःखों को देखकर उनके दुखों को दूर करने में प्रवृत्त होते हैं। आपने ही मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम के रूप में अवतार लिये। माने निर्गुण-निर्विकार ब्रह्म ही सगुण-साकार रूप धारण करके संसार के विकारों को दूर करता है। देवता कहते हैं कि हे प्रभु! जब भी देवता लोगों को कष्ट होता है, तो उनकी रक्षा के लिये आप नाना प्रकार के शरीर धारण करके, उनके दुःखों का विनाश करते हो। माने भगवान् का एक कार्य धर्म की रक्षा करना है, और धर्म के मार्ग पर चलने वालों की रक्षा करना भी है। इसकी व्यवस्था भगवान् समय-समय पर नाना प्रकार से करते रहते हैं।

'यह खल मलिन सदा सुरद्रोही' - यह दुष्ट रावण तो बड़ा मलिन हृदय था, देवताओं का सदा शत्रु, कामनाओं से ग्रसित, लोभ से ग्रसित, मद में रत और बड़ा ही क्रोधी था। इससे मालूम होता है कि यही दुर्गुण निशाचरी स्वभाव हैं। और ये दुर्गुण सद्गुणों को नष्ट करते हैं। देवता कहते हैं कि हे भगवान्! यह तो अधमों का भी शिरोमणि था (जैसे समस्त मानसिक विकारों का शिरोमणि **'मोह'** है), लेकिन इसने भी आपका पद प्राप्त कर लिया। यह तो हमारे लिये बड़े विस्मय की बात हुई।

'हम देवता परम अधिकारी' - हम देवता लोग तो श्रेष्ठ अधिकारी (धर्म के मार्ग पर चलने वाले) हैं। लेकिन हमारे साथ एक समस्या है कि हम स्वार्थरत हैं। इसके माने हैं कि **कोई धर्म के मार्ग पर कितना ही चले, उसका स्वार्थ जब तक नहीं छूटेगा, वैराग्य नहीं आवेगा, तो परमार्थ कहाँ मिल सकता है?** देवता कहते हैं कि हमने भौतिक कामनाओं के वशीभूत होकर आपकी शक्ति को भुला दिया और जन्म-मरण के चक्र में लगातार पड़े हुए हैं (देवताओं को भी पुण्यक्षीण होने पर स्वर्ग छोड़कर मृत्युलोक में आना पड़ता है - उनका यह चक्र चलता ही रहता है)। हे भगवन्! अब हम आपकी शरण में आये हैं कि इन कामनाओं से छुटकारा मिले और हमें जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त हो।

इस प्रकार से देवताओं ने भगवान् से विनती की और हाथ जोड़कर एक किनारे खड़े हो गये।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्रमण्डल में सोलहवाँ नक्षत्र 'विशाखा' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुतिमण्डल की यह सोलहवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का विशाखा नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम विशाखा है (इसी का दूसरा नाम 'राधा' भी है), और इस स्तुति को करने वाले देवों की भी विविध शाखाएँ हैं - वसु, रुद्र, आदित्य, अग्नि, मरुद्‌गण, लोकपाल, दिक्पाल, सिद्ध, गन्धर्व आदि। इस प्रकार यह विशाखा नक्षत्र और इस स्तुति के बीच नाम साम्य हो गया।

३. आकार-रूप साम्य – विशाखा नक्षत्र का आकार तोरण के समान है। तोरण देखने में सुन्दर लगता है, ऐसे ही देवतागण भी इस स्तुति में 'बचन कहहिं जनु परमारथी' देखने में बड़े सुन्दर वचन कहते हैं। तोरण ऊँचा-नीचा रहता है, उसी प्रकारसे इनके वचन भी सुसंबद्ध नहीं हैं। इस प्रकार यह विशाखा नक्षत्र और इस स्तुति के मध्य आकार-रूप साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य – विशाखा नक्षत्र में चार तारे हैं, इसी प्रकारसे इस स्तुति में भगवान् को 'रघुराया', 'देव', 'नाथ' और 'प्रभु' इन चार प्रकार से सम्बोधित किया गया है, तो ये चारों सम्बोधनरूपी तारे हैं। यह तारे संख्या साम्य सिद्ध हो गया।

५. देवता साम्य – इस नक्षत्र के देवता इन्द्र और अग्नि हैं, और देखते हैं कि इस स्तुति को करने वालों में इन्द्र और अग्निदेव हैं ही। यह देवता साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य – विशाखा नक्षत्र **'धर्म'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। देखते हैं कि इस स्तुति को करने वाले देवतागण हैं, और शास्त्रों में कहा गया है कि जो जीव, इस लोक में स्वर्ग की कामना से अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं, वे शरीर छोड़ने पर देवलोक में जाते हैं, तथा अपने पुण्यों के क्षीण होने तक, वहाँ पर देवताओं के रूप में वास करते हैं। अर्थात् **'धर्म'** पुरुषार्थ के बल पर देवपद प्राप्त होता है, तो यह नक्षत्र और स्तुति के बीच पुरुषार्थ की दृष्टि से साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - १७

ब्रह्मदेवकृत स्तुति (लङ्काकाण्ड) - अनुराधा नक्षत्र

अति सप्रेम तन पुलकि बिधि अस्तुति करत बहोरि।।११०।।

छं० - जय राम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे।।
भव बारन दारन सिंह प्रभो।गुन सागर नागर नाथ बिभो।।
तन काम अनेक अनूप छबी। गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कबी।।
जसु पावन रावन नाग महा। खगनाथ जथा करि कोप गहा।।
जन रंजन भंजन सोक भयं। गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयं।।
अवतार उदार अपार गुनं। महि भार बिभंजन ग्यानघनं।।
अज ब्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा।।
रघुबंस बिभूषन दूषन हा। कृत भूप बिभीषन दीन रहा।।
गुन ग्यान निधान अमान अजं। नित राम नमामि बिभुं बिरजं।।
भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं। खल बृंद निकंद महा कुसलं।।
बिनु कारन दीन दयाल हितं। छबि धाम नमामि रमासहितं।।
भव तारन कारन काज परं। मन संभव दारुन दोष हरं।।
सर चाप मनोहर त्रोन धरं। जलजारुन लोचन भूपबरं।।
सुख मंदिर सुंदर श्रीरमनं। मद मार मुधा ममता समनं।।
अनवद्य अखंड न गोचर गो। सबरूप सदा सब होइ न गो।।
इति बेद बदंति न दंतकथा। रबि आतप भिन्नमभिन्न जथा।।
कृतकृत्य बिभो सब बानर ए। निरखंति तवानन सादर ए।।

धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे।।
अब दीनदयाल दया करिऐ। मति मोरि बिभेदकरी हरिऐ।।
जेहि ते बिपरीत क्रिया करिऐ। दुख सो सुख मानि सुखी चरिऐ।।
खल खंडन मंडन रम्य छमा। पद पंकज सेवित संभु उमा।।
नृप नायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं।।

दो० - बिनय कीन्हि चतुरानन प्रेम पुलक अति गात।
सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात।।१११।।

अर्थ सहित व्याख्या -

अब भगवान् श्रीरामजी के सामने ब्रह्माजी आ खड़े हुए और वे अत्यन्त प्रेम से पुलकित शरीर होकर स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं कि **'जय राम सदा सुखधाम हरे'** - हे भगवन्! आप सदा सुख के धाम हैं और दुखों का हरण करने वाले हैं, आपकी जय हो। आप रघुवंश के नायक हैं और समस्त जीवों के भी स्वामी हैं। आप धनुष-बाण धारण किये हुए हैं। जीव के **'भव बारन'** - माने इस संसार रूपी हाथी को नष्ट करने के लिये हे भगवन्! आप सिंह के समान हैं। आप दैवी गुणों के सागर हैं और परम चतुर हैं। हे प्रभु! आप सर्वव्यापक हो। करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर आपका शरीर है। आपके गुणों का गान सब सिद्ध, मुनी और ज्ञानी लोग करते रहते हैं। आपका यश बड़ा पवित्र है, माने जो आपके यश का गान करता रहे तो उसका चित्त भी पवित्र हो जाता है।

'रावण नाग महा' - रावण एक भयङ्कर सर्प के समान जहरीला था, जो सबके लिये काल समान था; उसको आपने

गरुड़ के समान झपट कर पकड़ लिया और वह आपके मुख में समा गया। हे प्रभु! आप भक्तों को सुख देने वाले और उनके दुःख और भय को दूर कर देने वाले हैं। हे भगवन्! आप सदा क्रोध रहित और नित्यज्ञान स्वरूप हैं। आप निर्गुण निराकार होते हुए भी दूसरों पर कृपा करने के लिये सगुण साकार अवतार लेते हो और फिर जो लीलाएँ करते हो, उन गुणों का वर्णन भला कौन कर सकता है? आपका अवतार पृथ्वी का भार हरण करने वाला है। निर्गुण रूप में आप ज्ञान का समूह (चिद्घन) हैं, माने आपमें ज्ञान-अज्ञान भेद नहीं है। सदा अखण्ड एकरस विद्यमान हैं। **'अज ब्यापकमेकमनादि सदा'** - आप वह चैतन्य तत्त्व हैं जो अजन्मा (अवतार होता है लेकिन आपका जन्म नहीं होता) और सर्वव्यापक हैं, अद्वितीय हैं और सदा ही अनादि है। हे करुणाकर श्रीरामजी! मैं बड़ा ही आह्लादित होकर आपको प्रणाम करता हूँ।

हे रघुवंश के भूषण! **'दूषन हा'** - आप हमारे अन्दर के समस्त दोषों का हरण करने वाले हो। विभीषण बड़ा दीन था, उसे आपने लङ्का का राजा बना दिया। और देखते हैं कि **संसार का हर जीव, मोह के अधीन होकर, संसार चक्र में पड़ कर विभीषण के समान ही दीन हो रहा है। भगवान् की कृपा हो तो जीव की दीनता समाप्त हो जाए; वह अपनी ही वृत्तियों का स्वामी (राजा) बन जाए। 'गुन ग्यान निधान अमान अजं'** - आप गुण और ज्ञान के निधान हैं और अहङ्कार रहित हैं। आपका अवतार तो होता है लेकिन जन्म नहीं होता। हे भगवन्! मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ। आप व्यापक और मायाकृत विकारों से रहित; निर्विकार और निर्लेप हैं।

ध्यान दें कि यद्यपि ब्रह्माजी भगवान् श्रीरामजी को सगुण साकार रूप में मानवाकार रूप धारण किये हुए देख रहे हैं लेकिन कहते हैं कि आप आकाश की तरह सर्वव्यापक हैं। माने ब्रह्माजी को इस साकार रूप के पीछे भगवान् का निर्गुण निराकार रूप भी दिखायी दे रहा है। **मूर्तिपूजा करने का भी यही विधान है कि मूर्ति तो छोटी सी है लेकिन भाव उसके पीछे यह रहे कि हम परब्रह्म परमात्मा की पूजा कर रहे हैं। 'भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं'** - आपकी भुजाओं के बल का बड़ा भारी प्रताप है, दुष्टों के समूह का विनाश करने में आप बड़े कुशल हैं। दीनों के ऊपर आप अकारण दया करने वाले और उनका हित करने वाले हैं। हे भगवान् श्रीरामजी! आप शोभा के धाम हैं, आपको मैं श्रीसीताजी सहित फिर नमस्कार करता हूँ।

आप संसार सागर से पार करने वाले हैं और **'कारन काज परं'** - कारणरूपा अव्याकृत प्रकृति और कार्यरूपी व्याकृत प्रकृति (जगत्); दोनों ही प्रकार की प्रकृति से आप परे हैं। आप तो मायापति हैं, साथ ही मायातीत हैं। आप जीवों के मन में उत्पन्न होने वाले अज्ञानजनित विकारों (काम, क्रोध, लोभ आदि) का हरण करने वाले हैं। हे भगवान् श्रीरामजी! आप सुन्दर धनुष, बाण और तरकस को धारण करने वाले, **'जलजारुन'** - लाल कमल के समान रक्तवर्ण नेत्र वाले और राजाओं में सर्वश्रेष्ठ हैं। आप सुखधाम, सुन्दर और लक्ष्मीपति हैं।

'मद मार मुधा ममता समनं' - आप जीव के मद, काम और झूठी ममता (शरीर, धन परिवार आदि में जो ममत्व होता है, उस झूठे ममत्व) का नाश करने वाले हैं। हे भगवन्! आप समस्त दोषों से रहित हैं, अखण्ड एकरस हैं, माने सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं; इसलिये इन्द्रियों की पहुँच से परे हैं। आपने ही इस नामरूपमय

जगत् के सब रूपों को धारण किया हुआ है, लेकिन फिर भी आप **'सब होइ न'** - यह सब नहीं हैं।

गीता में भी भगवान् कहते हैं -

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।।

मुझ निराकार परमात्मा से यह सब जगत् जल से बरफ के सदृश परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्प के आधार स्थित हैं, किन्तु वास्तव में मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।

जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश कहने मात्र के लिये अलग-अलग हैं परंतु वास्तव में ये दो अलग वस्तुएँ नहीं हैं; उसी प्रकार आप और ये जगत्, दो वस्तुएँ नहीं हैं। माने केवल आप ही हैं, आपके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। यह नामरूपमय जगत् जो भासित होता है, यह कल्पनामात्र है। आपके बारे में यह सब वर्णन वेदों में आता है; यह कोई दंतकथा नहीं है।

'कृतकृत्य बिभो सब बानर ए' - हे सर्वव्यापी प्रभु! ऐसे मन-बुद्धि और इन्द्रियों से परे जो परब्रह्म परमात्मा (आप) हैं, वही इन वानरों के समक्ष साक्षात् विद्यमान् हैं। ये सब वानर कृतकृत्य हैं, जो आपके रूप को प्रेम और श्रद्धापूर्वक देख-देख कर सुख में मग्न हो रहे हैं। इन्होंने वानरदेह में रहते हुए भी परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लिया है इसलिये ये धन्य हैं। परन्तु हे हरि! हमारे जीवन और देवशरीर को धिक्कार है, क्योंकि हम देवशरीर पाकर भी **'तव भक्ति बिना भव भूलि परे'** - आपकी भक्ति के बिना भ्रमित होकर संसार में भूले पड़े हैं। तात्पर्य यह है कि जिस शरीर में भगवान् की भक्ति प्राप्त हो,

वही शरीर धन्य है; और भगवान् की भक्ति के बिना तो चाहे जैसा सुन्दर शरीर हो, वह धिक्कारने योग्य ही है।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दीनदयाल! अब मुझ पर कृपा कीजिये और **'मति मोरि बिभेदकरी हरिऐ'** - मेरी यह भेद बुद्धि हर लीजिये। यहाँ देखते हैं कि **ब्रह्माजी यद्यपि त्रिदेवों में से एक हैं लेकिन उनमें भी तीनों में भेद है इसलिये वे भी श्रेष्ठ स्तर के जीव ही हैं। वेदान्त के अनुसार जहाँ द्वैतभाव हैं वहाँ जीवत्व है, और जहाँ जीवत्व है वहाँ सुख-दुःख हैं।** यही बात ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन्! इस भेदबुद्धि के कारण ही मैं उल्टे कर्म करता हूँ और लौकिक (ब्रह्मलोक के सुख) सुख, जो कि नश्वर हैं और जिनके समाप्त होने पर दुःख ही प्राप्त होता है, उन्हें प्राप्त करके मैं अपने को सुखी मानता हूँ।

जीव अपनी भेदबुद्धि के ही कारण उल्टा व्यवहार करता है। अविनाशी आत्मा होते हुए भी मृत्यु से डरता है। मिथ्या संसार को सत्य मानकर उसमें सुख ढूँढता है और दुःख पाता है परंतु सत्य और आनन्द स्वरूप परमात्मा की ओर ध्यान ही नहीं देता। देवों का भी यही व्यवहार है।

'खल खंडन' - ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन्! आपने दुष्टों का विनाश किया है, मेरे हृदय में भी इस विभेदबुद्धि के रूप में बड़ा दुष्ट निशाचर बैठा हुआ है, आप उसका विनाश कर दीजिये। हे पृथ्वी के भूषण! फिर आप मेरे शुद्ध हुए हृदय में सुशोभित हो जाइये। आपके चरणकमल भगवान् शिवपार्वतीजी से सेवित हैं। हे राजाधिराज! आप मुझे यह वरदान दीजिये कि आपके चरण कमलों में सदा ही मेरा अनन्य प्रेम बना रहे। देखते हैं कि ब्रह्माजी ने ज्ञान और भक्ति दोनों का वरदान माँगा है।

इस प्रकार ब्रह्माजी ने अत्यन्त प्रेम-पुलकित शरीर से विनती की और शोभा के समुद्र भगवान् श्रीरामजी के दर्शन करते-करते उनके नेत्र तृप्त ही नहीं हो रहे हैं।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में सतरहवाँ नक्षत्र 'अनुराधा' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह सतरहवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का अनुराधा नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम अनुराधा है, अनुराधा का शाब्दिक अर्थ है - 'राधा' (विशाखा) के पीछे आने वाला। देखते हैं कि यह स्तुति विशाखा-स्तुति के तुरंत बाद हुई है, इसलिये इसका 'अनुराधा' नाम सार्थक है, और यह स्तुति एवं नक्षत्र में नाम साम्य हो गया।

३. आकार-रूप साम्य - इस नक्षत्र का आकार कमल के पुष्प जैसा है। कमल की सबसे बड़ी विशेषता उसकी **असंगता** होती है, और देखते हैं कि इस स्तुति में ब्रह्माजी मुख्य रूप से भगवान् से यही कहते हैं कि 'हे भगवन्! हमारे इस देव शरीर को धिक्कार है, जो हम आपकी भक्ति से रहित हुए सांसारिक विषयों में भूले पड़े हैं। हे दयालु! अब दया करके मेरी विभेद उत्पन्न करने वाली बुद्धि को हर लीजिये।' इस प्रकार ब्रह्माजी अति आर्त होकर, संसार के प्रति **असंगता** का वरदान माँग रहे हैं। इसके अतिरिक्त इस स्तुति में भगवान् के नेत्रों, उनके चरणों की बारम्बार कमल से उपमा दी गयी है। इस प्रकारसे यह इस स्तुति का नक्षत्र के साथ आकार-रूप साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य – अनुराधा नक्षत्र में चार तारे हैं। इस स्तुति में भी नाम, रूप, लीला और धाम के वर्णन के रूप में चार तारे हैं। यह अनुराधा नक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच में तारे संख्या साम्य हो गया।

५. देवता साम्य – अनुराधा नक्षत्र के देवता 'मित्र'= सूर्य हैं, और इस स्तुति में 'रबि आतप भिन्नमभिन्न जथा' के द्वारा भगवान् श्रीराम और संसार के स्वरूप का बोध कराया गया है। यह देवता साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य – अनुराधा नक्षत्र **'धर्म'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है, और पवित्रता तथा सद्‌गुणों के समूहों का दूसरा नाम धर्म है। इधर देखते हैं कि इस स्तुति में भगवान् के 'पावन यश' का स्मरण करते हुए, उन्हें 'अवतार उदार अपार गुनं', 'गुन ग्यान निधान', 'अनवद्य' आदि विशेषणों से युक्त बता रहे हैं, तो भगवान् के 'सद्धर्मवर्मौ हितौ' रूप को ही स्मरण किया जा रहा है। ब्रह्माजी 'रघुबंस बिभूषन' भगवान् को बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं, जो 'दूषन हा' अर्थात् समस्त दोषों को हरकर, उसे अधर्म से **धर्म** की ओर ले जाने वाले हैं। इस प्रकार यह धर्म पुरुषार्थ से सम्बन्धित स्तुतिनक्षत्र है।

एक विशेष बात यह है कि यह स्तुति जीवों का प्रारब्ध लिखने वाले ब्रह्माजी द्वारा की गयी है, और संतों का यह मानना है कि इस स्तुति के प्रत्येक चरण पर **'मेटत कठिन कुअंक भाल के'** संपुट लगाकर, सैकड़ों पाठ करने पर, व्यक्ति के प्रतिकूल प्रारब्ध में भी परिवर्तन होगा।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - १८

इंद्रकृत स्तुति (लङ्काकाण्ड) - ज्येष्ठा नक्षत्र

दो० - अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसलाधीस।
सोभा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुर ईस।।११२।।

छं० - जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिश्राम।।
धृत त्रोन बर सर चाप। भुजदंड प्रबल प्रताप।।
जय दूषनारि खरारि। मर्दन निसाचर धारि।।
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भए देव सकल सनाथ।।
जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार।।
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान बिहाल।।
लंकेस अति बल गर्ब। किए बस्य सुर गंधर्ब।।
मुनि सिद्ध नर खग नाग। हठि पंथ सब कें लाग।।
परद्रोह रत अति दुष्ट। पायो सो फलु पापिष्ट।।
अब सुनहु दीन दयाल। राजीव नयन बिसाल।।
मोहि रहा अति अभिमान। नहिं कोउ मोहि समान।।
अब देखि प्रभु पद कंज। गत मान प्रद दुख पुंज।।
कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अब्यक्त जेहि श्रुति गाव।।
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप।।
बैदेहि अनुज समेत। मम हृदयँ करहु निकेत।।
मोहि जानिऐ निज दास। दे भक्ति रमानिवास।।

छं० - दे भक्ति रमानिवास त्रास हरन सरन सुखदायकं।
सुख धाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकं।।
सुर बृंद रंजन द्वंद भंजन मनुजतनु अतुलितबलं।
ब्रह्मादि संकर सेब्य राम नमामि करुना कोमलं।।

दो० - अब करि कृपा बिलोकि मोहि आयसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीनदयाल।।११३।।

अर्थ सहित व्याख्या -

यहाँ पर जितने वानर-भालू आदि हैं ये सब देवताओं के अंश हैं, उन्होंने भी अवतार लिया था। इनमें इन्द्र ने बालि के रूप में अवतार लिया था लेकिन बालि भगवान् की लीला में कुछ सहयोग नहीं कर सका। अब वही इन्द्र, भगवान् के सामने आकर कहता है कि भगवान् हमारे लिये कुछ सेवा कार्य बताइये। बालि के रूप में इन्द्र के मन में बहुत अभिमान था, वह बात भी इन्द्र की इस स्तुति में है। इसके अतिरिक्त निशाचरों ने इन्द्र आदि देवताओं को इतना अधिक सताया था कि इन निशाचरों के मारे जाने के बाद भी; उनके लगाये घाव अभी भी इन्द्र के मन में हरे हैं। इसीलिये वह बार-बार इन निशाचरों को मारने के लिये भगवान् के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है।

'जय राम सोभा धाम' - इन्द्र ने देखा कि भगवान् श्रीराम, सीताजी और लक्ष्मणजी सहित, बड़े ही सुन्दर स्वरूप में विराजमान हैं, तो बार-बार उनकी जय-जयकार बोलता है। इन्द्र अपने अनुभव से कहता है कि आप अपनी शरण में आये हुए लोगों को शांति विश्राम देने वाले हैं। आप धनुष-बाण तरकस धारण किये हुए हैं और आपकी भुजाओं में बड़ी शक्ति है, आप

बड़े प्रतापी हैं। इसी बल से आपने खर-दूषण निशाचरों को मारा है। और भी जो निशाचरी सेना थी; उस सबका आपने विनाश कर दिया। हे नाथ! इस दुष्ट राक्षस (रावण) को आपने मार दिया, यह बड़ी भारी कृपा की, इससे सब देवताओं को शांति मिल गयी; अब हम सुरक्षित हो गये।

'जय हरन धरनी भार' - हे भूमि का भार हरने वाले! हे अपार श्रेष्ठ महिमा वाले! आपकी जय हो। हे कृपानिधान! आपने रावण का वध किया है आपकी जय हो। आपने सब निशाचरों को बेहाल कर दिया। लङ्कापति रावण को अपने बल का बड़ा भारी घमंड था। उसने गन्धर्वों से लेकर देवताओं तक को अपने वश में कर रखा था और वह मुनि, सिद्ध, मनुष्य, पक्षी, नाग आदि सभी का बाधक बना हुआ था।

अब यहाँ कथा में जो रावण है इसके स्थान पर **'मोह'** शब्द का प्रयोग करते रहें, और देखें कि मनुष्य ही नहीं वरन् सृष्टि के सब प्राणी, पशु-पक्षी आदि तक भी मोह में पड़े हुए हैं। सबको अपने शरीरों में आसक्ति है और शरीर से सम्बन्ध रखने वाला जो कुछ भी है, उस सबमें आसक्ति है। गन्धर्व, पितृ, देवता भी मोह में पड़े हुए हैं। ऐसा लगता है कि यह मोह तो छूट ही नहीं सकता लेकिन परमात्मा मोह से भी अधिक शक्तिशाली है, वही जीव को इससे छुड़ा सकता है। मोह बहुत अधिक दुःख देने वाला है इसीलिये इसका नाम **'रावण'** (रावण=रुलाने वाला) रखा।

अगर आपको कभी रोना पड़े अथवा न भी रोयें और हृदय में ही हूक उठे, तो समझ लेना कि रावण (मोह) रुला रहा है। जब तक इस मोह से नहीं छूटते तब तक यही दशा

रहेगी हृदय में गुब्बारे उठते रहेंगे। उससे छुटकारा पाने का उपाय है कि भगवान् की शरण में जाओ, हृदय में भक्ति लाओ; भगवान् की कृपा हो, तब अनासक्ति आवे, वैराग्य आवे – तब छुटकारा हो।

'परद्रोह रत अति दुष्ट' – इन्द्र कहता है कि यह दुष्ट रावण हर किसी को कष्ट पहुँचाता रहता था इसलिये इसने अपने पापों का फल पाया। अब हे दीनों पर दया करने वाले भगवन्! हे कमल जैसे विशाल नयनों वाले! सुनिये, मुझे पहले बड़ा अभिमान था कि मेरे समान शक्तिशाली दुनियाँ में कोई नहीं है (मैं तो स्वर्ग का राजा हूँ), लेकिन हे भगवन्! आपके चरणकमलों के दर्शन प्राप्त करके, मेरा वह दुःख देने वाला अहङ्कार समाप्त हो गया। माने बालि के रूप में इन्द्र को जो शक्ति का अभिमान था, वह भगवान् ने बालिवध करके समाप्त कर दिया। इस प्रकार देखते हैं कि भगवान् की कृपा होती है तो मोह भी दूर होता है और अहङ्कार भी दूर होता है।

'कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव' – इन्द्र कहते हैं कि कोई निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करता है जिन्हें वेद अव्यक्त (इन्द्रिय अगोचर) कहते हैं; लेकिन मुझे तो आपका यह सगुण सुंदर कोसलराज स्वरूप ही प्रिय लगता है। इसलिये वैदेही और भाई लक्ष्मणजी सहित आप मेरे हृदय में सदा निवास कीजिये और अपना दास जानकर मुझे अपनी भक्ति प्रदान कीजिये। हे रमानिवास भगवन्! आप शरणागत के भय को हरने वाले और उन्हें सुख देने वाले हैं। हे अगणित कामदेवों की शोभायुक्त! सुखनिधान! रघुकुल भूषण श्रीराम भगवान्! आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

'सुर बृंद रंजन द्वंद भंजन' – हे देवसमूहों को आनन्द देने वाले! जन्म-मृत्यु, हर्ष-विषाद आदि द्वन्द्वों को नष्ट करने वाले!

मनुष्य शरीर में अवतार लिये हुए! अतुलित बलशाली! ब्रह्मादि शङ्करजी से सेवित! करुणा से कोमल हृदय वाले भगवान् श्रीरामजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे भगवन्! आप तो बड़े कृपालु हैं इसलिये मुझ पर कृपा दृष्टि डालकर मेरी अब तक की सब गलतियों को क्षमा कीजिये और मुझे भी कुछ सेवा करने की आज्ञा दीजिये। कृपया बताइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

'सुनि प्रिय बचन' - भगवान् ने जब देखा कि इन्द्र अपना पहले वाला अभिमान त्याग कर विनम्रतापूर्वक भगवान् की सेवा करने की इच्छा प्रकट कर रहा है, तो भगवान् को उसके ये वचन बड़े प्रिय लगे। कारण यही है कि अभिमान दुःख देने वाला होता है इसलिये भगवान् अपने भक्तों के हृदय में दुःख का मूल अहङ्कार; विनष्ट हुआ देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं। अब सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीरामजी, इन्द्र को एक सेवा करने की आज्ञा देंगे।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में अठारहवाँ नक्षत्र 'ज्येष्ठा' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह अठारहवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का ज्येष्ठा नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम ज्येष्ठा है, तो यह स्तुति भी समस्त देवताओं में ज्येष्ठ-श्रेष्ठ, देवराज इन्द्र ने की है। इस प्रकारसे इस स्तुति का ज्येष्ठा नक्षत्र से नाम की दृष्टि से साम्य हो गया।

३. आकार-रूप साम्य - नक्षत्र का आकार छाते के जैसा है। छाता वर्षा एवं आतप से सुरक्षा प्रदान करता है। यहाँ पर देखते हैं कि भगवान् श्रीरामजी ने रावण और उसके अन्य साथी निशाचरों का विध्वंस करके, देवताओं को सुरक्षा प्रदान की है। इसी बात के लिये इन्द्र इस स्तुति में बार-बार कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं। इस प्रकारसे यह इस स्तुति एवं ज्येष्ठा नक्षत्र के बीच आकार-रूप साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य - ज्येष्ठा नक्षत्र में तीन तारे हैं। इस स्तुति-नक्षत्र में भी सगुण की रुचि, भक्ति की याचना और कृपा दृष्टि की याचना के रूप में तीन तारे हैं

५. देवता साम्य - ज्येष्ठा नक्षत्र का देवता इन्द्र है, और इस स्तुति के करने वाले इन्द्र ही हैं। इस प्रकार से देवता के आधार पर ज्येष्ठा नक्षत्र एवं इस स्तुति में साम्य सिद्ध हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य - ज्येष्ठा नक्षत्र का सम्बन्ध **'अर्थ'** पुरुषार्थ से है। अर्थ के अन्तर्गत धन-सम्पत्ति, सांसारिक ऐश्वर्य आदि आते हैं। समस्त ऐश्वर्य़ की स्वामिनी रमा हैं, और इस स्तुति में भगवान् को **रमा निवास** (लक्ष्मीजी का निवास स्थान) कहकर प्रार्थना की गयी है। इसके अतिरिक्त भगवान् ने रावण का वध करके इन्द्र की **राज्य-लक्ष्मी** उसे फिर से प्राप्त करा दी है, जिससे इन्द्र अत्यंत गद्गद होकर यह स्तुति कर रहे हैं। इस प्रकारसे यह स्तुति-नक्षत्र भी **'अर्थ'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित ही है।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - १६

शंभुकृत स्तुति (लङ्काकाण्ड) - मूल नक्षत्र

दो० - सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान।।११४क।।
परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिराँ बिनय करत त्रिपुरारि।।११४ख।।

छं० - मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक।।
मोह महा घन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुर रंजन।।
अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर। भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर।।
काम क्रोध मद गज पंचानन। बसहु निरंतर जन मन कानन।।
बिषय मनोरथ पुंज कंज बन। प्रबल तुषार उदार पार मन।।
भव बारिधि मंदर परमं दर। बारय तारय संसृति दुस्तर।।
स्याम गात राजीव बिलोचन। दीन बंधु प्रनतारति मोचन।।
अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर।।
मुनि रंजन महि मंडल मंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन।।

दो० - नाथ जबहिं कोसलपुरीं होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार।।११५।।

अर्थ सहित व्याख्या -

भगवान् श्रीरामजी की स्तुति करके और उनके ऊपर फूलों की वर्षा करके सब देवतालोग सुन्दर विमानों में चढ़-चढ़

कर अपने-अपने लोक को वापिस चले गये। अब ऐसे एकांत में सुन्दर अवसर जानकर, ज्ञानवान भगवान् शङ्करजी भगवान् के पास आये। शङ्करजी तो भगवान् राम के परमभक्त हैं और इस समय भगवान् की मनोहर छवि को देखकर उनके हृदय में परमप्रेम की हिलोरें उठने लगीं। उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु हैं, दोनों हाथ जोड़े हैं, शरीर पुलकित है और अतिशय प्रेम के कारण गद्‌गद् हुई वाणी में **'त्रिपुरारि'**, भगवान् की स्तुति करने लगते हैं।

यहाँ पर ध्यान दें कि शङ्करजी त्रिपुरारि हैं, वे त्रिपुरासुर का विनाश करने वाले हैं। वेदान्त के अनुसार त्रिपुरासुर के माने हैं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति नामक तीनों पुरों में वास करने वाला प्रतिबिम्बित चैतन्य, और जो इस प्रतिबिम्बित चैतन्य से अपने अज्ञानजनित तादात्म्य को छोड़ कर, परमवैराग्य, परमज्ञान के बल पर इन अवस्थाओं का साक्षी होकर रहे, वही त्रिपुरासुर का वध करने वाला है; वही शङ्करजी हैं। ऐसे परम वैराग्यवान् और ज्ञानस्वरूप शङ्करजी भगवान् श्रीरामजी के प्रेम में भावविह्वल हो रहे हैं। यहाँ ज्ञात होता है कि पूर्णता की स्थिति में ज्ञान और भक्ति एक ही हैं।

'मामभिरक्षय रघुकुल नायक' - भगवान् शङ्करजी कहते हैं कि हे रघुकुलनायक! अपने सुन्दर हाथों में दिव्य शार्ङ्ग धनुष और तेजस्वी बाण धारण किये हुए आप मेरी सब ओर से रक्षा कीजिये। सङ्केत यह है कि जैसे आपने अभी अपने दिव्य धनुष-बाण से इन दुधर्ष निशाचरों का संहार किया है; इसी प्रकार मेरे हृदय में वास करने वाले मोह आदि निशाचरों से मेरी भी रक्षा कीजिये।

यहाँ पर ऐसी शङ्का हो सकती है कि भगवान् शङ्करजी जो भगवान् के परमभक्त हैं और ज्ञानस्वरूप हैं, जगद्गुरु हैं; उनके मन में मोह कैसे हो सकता है? वास्तव में शङ्करजी के मन में मोह नहीं है, वे तो संसार में मोहग्रसित जीवों से तादात्म्य करके ऐसे वचन बोल रहे हैं, वे परमभक्त हैं, अहङ्काररहित हैं, इसलिये इतनी दीनतापूर्वक भगवान् से स्तुति कर रहे हैं। हम लोगों को भी इसी प्रकार भगवान् से स्तुति करने की प्रेरणा लेनी चाहिए; इसी भाव से इस स्तुति को देखें।

'मोह महा घन पटल प्रभंजन' - शङ्करजी कहते हैं कि हे भगवन्! जीव मोह के वश में होकर अपने आत्म स्वरूप को तो गया भूल और आपके सगुण साकार रूप को मनुष्य जान लिया यह तो और महामोह हो गया। जैसे कि गीता में भगवान् स्वयं कहते हैं—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।।

बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अविनाशी परमभाव को न जानते हुए मन-इन्द्रियों से परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा को मनुष्य की भाँति जन्मकर व्यक्तिभाव को प्राप्त हुआ मानते हैं।

हे भगवान्! यह महामोह रूपी बुद्धिहीनता मेघों के घने समूहों के समान जीवों के हृदय में छायी है जिसके कारण स्वयंप्रकाश आत्मा का प्रकाश अनुभव में नहीं आ रहा है लेकिन आप इन मेघों को उड़ा ले जानी वाली प्रबल वायु के समान हैं। माने आपकी उपस्थिति में महामोह भी टिक नहीं सकता; इसलिये आप मेरे हृदय में सदा निवास कीजिये।

'संसय बिपिन अनल' - हे भगवन्! मोह नष्ट होने पर

भी यदि फिर भी किञ्चित संशय मन में रह गये, माने ज्ञान में जब तक दृढ़ता नहीं आयी, तो पुनः जीव का पतन होने में देर नहीं लगती। लेकिन आप हृदय में वास करेंगे तो संशयरूपी वन को जलाने के लिये आप दावानल के समान हैं। माने भगवान् का ज्ञान, भगवान् की भक्ति संशयों को नष्ट कर देने वाली है और सात्विक वृत्तियों को बढ़ावा देने वाली है।

'अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर' - हे प्रभु! जब आप जीव के हृदय में वास करते हैं, तो उसे यह निश्चित ज्ञान हो जाता है कि निर्गुण निराकार ब्रह्म और सगुण साकार ब्रह्म; दोनों एक ही हैं। इस ज्ञान के साथ उसके हृदय से सारे भ्रम इसी प्रकार दूर हो जाते हैं जैसे सूर्य के प्रबल प्रकाश में अन्धेरा रह ही नहीं सकता। माने ज्ञानस्वरूप भगवान् श्रीरामजी जब हृदय में वास करेंगे, तो अज्ञानरूपी अंधेरा कहाँ टिक सकता है?

'काम क्रोध मद गज पंचानन' - हे भगवन्! जीव के हृदय में काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि मानसिक विकार शक्तिशाली मतवाले हाथियों के समान उत्पात मचाते रहते हैं। जीव निरन्तर इनसे पीड़ित रहता है। हे भगवन्! जिसके हृदय में आप वास करते हैं, तो वनराज सिंह के समान आप काम क्रोधादिरूपी मतवाले हाथियों को नष्ट कर देते हैं।

जीव के मन रूपी सरोवर में असँख्य विषय-कामनाएँ कमल वन के समान उगती रहती हैं लेकिन हे भगवन्! आप उस कमल वन को नष्ट कर देने वाले प्रबल पाले के समान हैं। **'उदार पार मन'** - वेदान्त के अनुसार एक परब्रह्म परमात्मा ही सत्य है और जो कुछ भी भासित होता है वह सब भ्रान्ति

मात्र है। शङ्करजी कहते हैं कि हे प्रभु! यह नामरूपात्मक जगत् तो इन्द्रिय-मन से ग्रहणीय है परंतु आप (परब्रह्म परमात्मा) मन की पहुँच से परे हैं।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।

इन्द्रियों के विषयों को और जहाँ तक मन जाता है, हे भाई! उस सब को माया जानना। अर्थात् मन की पहुँच तो माया के भीतर ही है लेकिन मायातीत सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा जो मन का भी अधिष्ठान है उसे मन कैसे पा सकता है?

'भव बारिधि मंदर' - हे प्रभु! जैसे मंदराचल पर्वत के सहारे क्षीरसागर का मंथन किया गया, तो उससे अमृत प्राप्त हुआ था; इसी प्रकार जीव के हृदय में भी राग-द्वेषात्मक संसार एक अपार सागर के समान है। लेकिन जब परमात्मा के नाम के सहारे सतत परमात्मचिंतन रूपी हृदयमंथन किया जाता है तो उसके हृदय में परमात्मा की भक्ति, परमात्मा का ज्ञान रूपी अमृत प्रकट होता है। हे रघुनायक! जीव के लिये जन्म-मरण के चक्र में घूमते रहना ही सबसे बड़ा **'दर'** - भय है; और इस भय से वह स्वयं (अपना अहङ्कार रखते हुए) कभी पार नहीं पा सकता। इसके लिये भगवान् आपका सहारा चाहिए।

भगवान् गीता में भी यही बात कहते हैं—

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।

हे कुन्तीपुत्र! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता।

'स्याम गात राजीव बिलोचन' - हे सुन्दर श्याम वर्ण वाले! हे कमल नयन! हे दीनबंधु! हे शरणागतों के दुःख-क्लेशों को नष्ट करने वाले! हे भगवान् श्रीरामजी! आप सदा मेरे हृदय

में निवास कीजिये। आप मुनियों को सुख देने वाले हैं और सारे ब्रह्माण्ड के भूषण हैं। हे तुलसीदास के प्रभु! आप मेरे हृदय में वास करके मेरे भवभय को विनष्ट कर दीजिये। यहाँ पर देखते हैं कि गोस्वामीजी भगवान् शङ्करजी की स्तुति लिखते समय इतने तद्भाव भावित हो गये कि **'तुलसिदासप्रभु'** लिख दिया। शङ्करजी के भाव जैसे तुलसीदासजी के भाव ही बन गये। वही भक्ति, वही परमप्रेम तुलसीदासजी के हृदय में भी जाग्रत हो गया।

'नाथ जबहिं कोसलपुरीं होइहि तिलक तुम्हार' - शङ्करजी कहते हैं कि हे नाथ! अयोध्या में जब आपका राज्याभिषेक होगा, तब हे कृपानिधान भगवान्! मैं आपके सुन्दर चरित्र देखने आऊँगा। शङ्करजी प्रेमपूर्वक उस दृश्य को साक्षात् अपने नेत्रों से देखने के लिये बड़े आतुर हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से देखें, तो सद्गुरु के मार्गदर्शन में सतत् आध्यात्मिक साधना करते-करते जब जीव का चित्त शुद्ध होकर, उसके हृदय के सिंहासन पर परब्रह्म परमात्मा आ विराजता है, तो उसका व्यवहार, चरित्र अति सुन्दर हो जाता है जिसे देख-देखकर सद्गुरु रूपी शङ्कर भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं। वे तो इसी अवसर की प्रतीक्षा में ही रहते हैं।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में उन्नीसवाँ नक्षत्र 'मूल' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह उन्नीसवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का मूल नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य – इस नक्षत्र का नाम मूल है, और इस स्तुति के कर्ता शिवजी भी श्रीराजी के भक्तों में मूल (अग्रगण्य) हैं। श्रीरामचरितमानस के मूल कवि भी शिवजी हैं। 'मूलं धर्मतरोः' भी शिवजी हैं और इस स्तुति का मूल विषय भी समस्त दुखों और संसार के मूल – मोह तथा उसके कार्य का विनाश है। इस प्रकार 'मूल' नक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच नाम साम्य सिद्ध हो गया।

३. आकार-रूप साम्य – नक्षत्र का रूप सिंह के जैसा है। इस स्तुति में शिवजी कहते हैं कि 'काम क्रोध मद गज पंचानन' – हे भगवान्! काम, क्रोध और मदरूपी हाथियों के (वध) के लिये आप सिंह के समान हैं। इस स्तुति के कर्ता शिवजी का भी एक नाम पंचानन है, जो कि सिंह का पर्यायवाची है। इस प्रकारसे इस स्तुति का मूल नक्षत्र से आकार-रूप साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य – मूल नक्षत्र में ११ तारे हैं, जिनमेंसे आठवाँ तारा अस्पष्ट है। देखते हैं कि इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भी प्रभंजन, अनल, मन्दिर, दिवाकर, पंचानन, तुषार, मंदर, और कुशल कर्णधार (बारय तारय – यह आठवाँ अस्पष्ट तारा है), राजीव, मंडन और सिंधु इस प्रकारसे ११ तारे हैं। इस स्तुति के कर्ता शिवरूप रुद्र भी ११ ही हैं। इस प्रकार यह इस स्तुति और मूल नक्षत्र के बीच तारे संख्या साम्य हो गया।

५. देवता साम्य – इस नक्षत्र का देवता 'निर्ऋति' है, जो **विनाश की देवी** है। इस स्तुति के कर्ता शिवजी भी संहार करने वाले, **प्रलय के देवता** हैं। यह स्तुति भी, मोह, संशय, भ्रमरूपी अंधकार, काम, क्रोध, मद और दुस्तर संसृति के विनाश के लिये की गयी है। इस प्रकार देवता की दृष्टि से मूल नक्षत्र एवं इस स्तुति में साम्य सिद्ध हो गया।

५. पुरुषार्थ साम्य – मूल नक्षत्र **'काम'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। सच्चा पुरुषार्थ तो तब ही कहलाता है, जब धर्म, अर्थ, काम के द्वारा व्यक्ति मोक्ष की ओर बढ़े। यह स्तुति 'कामारि' (सांसारिक कामनाओं के विनाशक) भगवान् शिव ने की है। इसमें वे भगवान् से सांसारिक मनोरथों के नाश की प्रार्थना करते हैं। साथ ही उनकी बड़ी प्रबल पारमार्थिक कामना है, कि भगवान् हृदय में वास करें। इस आधार पर मूल नक्षत्र एवं इस स्तुति के मध्य पुरुषार्थ की दृष्टि से साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - २०

वेदकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड) - पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र

छं० - जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने।।
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे।।
तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे।।
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे।।
जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।।
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे।।
जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी।।
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।।
अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने।।
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।

पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे।।
जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं।।
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं।।

दो० - सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अंतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार।।१३क।।

अर्थ सहित व्याख्या -

चारों वेद - चारण, सूत, मागध, भाट आदि का रूप बनाकर भगवान् श्रीरामजी की महिमा गान करने आये। कृपानिधान भगवान् तो सर्वज्ञ हैं इसलिये जान गये कि भाटों के रूप में ये वेद आये हुए हैं, तो भगवान् ने उनका बहुत ही आदर किया। तात्पर्य यह है कि राजा का धर्म है कि वैदिक ज्ञान का आदर करे, उसे प्रमाण माने और उसी के अनुसार अपना जीवन बनावे। राजसभा में उपस्थित अन्य लोग वेदों को नहीं पहचान पाये, और अब वेद भगवान् का गुणगान करने लगते हैं।

वेद भगवान् श्रीरामजी की वन्दना करते हुए उनकी महिमा का वर्णन किसी लौकिक राजा के रूप में नहीं करते वरन् परब्रह्म परमात्मा के ही रूप में करते हैं। वही परमात्मा राजसिंहासन पर बैठे हुए हैं। वेद कहते हैं कि हे भगवन्! आपका निर्गुण रूप भी है और सगुण रूप भी है। जो निर्गुण रूप (सच्चिदानन्द स्वरूप) आकाश की तरह सर्वत्र व्यापक अपनी सत्ता से विद्यमान है, वही फिर अपनी त्रिगुणात्मक माया के द्वारा समस्त जगत् का रूप धारण करता है, तो वही ईश्वर, वही हिरण्यगर्भ और वही विराट है।

और फिर वही परमात्मा अवतार लेकर सगुण साकार रूप धारण करता है। माने परमात्मा के अतिरिक्त और कहीं कुछ भी नहीं है।

'रूप अनूप' - आपका सौन्दर्य बड़ा अद्भुत है। आप समस्त लोकों के राजाओं के भी राजा हैं। रावण इत्यादि बड़े-बड़े शक्तिशाली दुष्टों को आपने अपनी भुजाओं के बल से मार डाला है। इस प्रकार आपने मनुष्य शरीर में अवतार लेकर संसार के भार को नष्ट करके दारुण दुःखों को भस्म कर दिया है। देखते हैं कि भगवान् का स्मरण करने से, उनकी कृपा से जीव के दुःखमय संसार की निवृत्ति हो जाती है। हे शरणागत की रक्षा करने वाले! हे दयालु भगवन्! आपकी जय हो। मैं आपको, आपकी शक्ति सीताजी सहित नमस्कार करता हूँ।

'तव बिषम माया' - आपकी माया बड़ी ही विषम है, माने बड़े दुःख देने वाली है। हे भगवन्! जितने भी सुर-असुर, नाग-मनुष्य आदि हैं, ये सब माया जाल में पड़े हुए, दिन-रात, काल-कर्म और गुणों से भरे हुए संसार-सागर में भटक रहे हैं। सृष्टि की रचना करने वाली माया और जीव को मोह में डालने वाली अविद्या माया; परमात्मा की इन दोनों मायाओं से घिरा हुआ जीव कर्मों के नाना प्रकार के फल भोगता हुआ घूम रहा है। **'जे नाथ करि करुना बिलोके'** - हे भगवन्! आप जिनके ऊपर कृपा करते हैं, वे इस माया-जाल से छूट जाते हैं। दैहिक, दैविक, भौतिक; तीनों तापों से उनका छुटकारा हो जाता है।

'भव खेद छेदन दच्छ' - वेद कहते हैं कि सब जीव जो संसार सागर में पड़े हुए दुःखों को भोग रहे हैं उन सब दुःखों से छुटकारा कराने वाले आप सर्वसमर्थ हैं। हे रमापति

भगवान् श्रीरामजी! आप हमारे ऊपर कृपा करके हमारी भी रक्षा कीजिये हम आपको नमस्कार करते हैं।

वेद आगे कहते हैं कि दो प्रकार के साधक भगवान् की शरण में जाते हैं - एक ज्ञानी हैं और दूसरे भक्त हैं। ज्ञानी भी ठीक हैं, लेकिन हम भक्ति का विशेष रूप से आग्रह करते हैं। जिनको बड़ा ज्ञान (परोक्ष ज्ञान) हो गया और उस ज्ञान का अभिमान हो गया, तो उस **अभिमान के कारण उनकी अविद्या नष्ट नहीं होने पायी।** इसीलिये वे ज्ञान के बल पर देवताओं को भी दुर्लभ पद को तो प्राप्त कर गये। लेकिन यदि उन्होंने संसार के भय को हरने वाली आपकी भक्ति का आदर नहीं किया, तो बिना भक्ति के वे उस पद पर टिक नहीं पाते और बाद में उनका फिर अधःपतन हो जाता है।

भक्ति का तात्पर्य है कि चित्त निरंतर उस परमात्मा में ही लगा रहे। वेद कह रहे हैं कि हे भगवन्! जो आप पर विश्वास करते हैं और **'सब आस परिहरि'** - संसार के विषय भोगों, यश-कीर्ति, स्वर्ग आदि सब कामनाओं को त्याग करके; एक मात्र परमात्मा की शरण में हैं - ऐसे लोग आपका नाम जपते हुए बिना परिश्रम के ही संसार सागर से तर जाते हैं। हे सर्वत्र समभाव में रहने वाले भगवान् श्रीरामजी! हम आपको प्रणाम करते हैं।

'जे चरन सिव अज पूज्य' - जिन चरणों की शङ्करजी, ब्रह्माजी भी पूजा करते हैं और जिन चरणों की पवित्र धूलि के स्पर्श से मुनि पत्नी अहल्या भी तर गयीं। यहाँ पर ध्यान दें कि ब्रह्माजी समष्टि बुद्धि हैं, शङ्करजी समष्टि रूप विश्वास हैं और ये दोनों तो शुद्ध बुद्धि हैं; परमात्मा को समर्पित हैं ही **लेकिन अहल्या जो विषयी बुद्धि की प्रतीक है; वह अशुद्ध**

बुद्धि भी परमात्मा का चिंतन करके शुद्धता को प्राप्त हो जाती है।

'नख निर्गता' - आपके चरणों के नख से मुनियों द्वारा वन्दित, तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गङ्गाजी निकली हैं। गङ्गाजी भगवान् का ज्ञान या भगवान् की भक्ति हैं, जो तीनों लोकों में विद्यमान हैं।

तात्पर्य यह है कि जो शुद्ध पवित्र ज्ञान परम्परा से चला आ रहा है; परमात्मा का यही ज्ञान विश्वास रूप बुद्धि (शङ्करजी की जटाओं) में आया फिर मुनियों की बुद्धि में आया, तब वेदों में आया फिर गुरु परम्परा से शिष्यों से होता हुआ आगे बढ़ता चला जा रहा है - **यही परमात्म ज्ञान की धारा गङ्गाजी हैं**। जो इस परमात्म ज्ञान, परमात्मा की भक्ति को प्राप्त करेगा, उसमें जो मलिनता होगी, वह दूर हो जायेगी।

भगवान् के चरणों में ध्वजा, वज्र, अङ्कुश और कमल के चार शुभ चिह्न हैं। इन चारों में से एक भी चिह्न किसी के चरण में होता है तो वह विश्व प्रसिद्ध महापुरुष होता है परंतु ऐसे चारों चिह्नों वाले तो तीनों लोकों के स्वामी परमात्मा ही हैं। ऐसे जो भगवान् हैं वे शरीर धारण करके अपने भक्तों के दुःख दूर करने के लिये वनों में नंगे पाव घूमते रहे, तो उनके जिन पैरों में काँटे चुभते रहे **'पद कंज द्वंद मुकुंद'** - वही आपके दोनों चरणकमल भक्तों को मुक्ति देने वाले हैं। हे राम! हे रमापति! हम नित्य आपके इन चरण कमलों का चिंतन करते हैं।

यहाँ पर वेदों ने जैसी प्रार्थना की है; भगवान् से ऐसी ही प्रार्थना करें, ध्यान करें; तो उस प्रार्थना का फल फिर हृदय में दिखायी देता है। अब आगे वेद यह वर्णन करते हैं कि

परब्रह्म परमात्मा और ये जगत्, जीवों का कर्मबन्धन आदि क्या है? इसी प्रकार का वर्णन वेदों में भी है और गीता के पन्द्रहवे अध्याय में भी है।

'अब्यक्तमूलमनादि तरु' - हे भगवन्! आपने ही इस सारे जगत् का रूप अथवा कहें कि संसारवृक्ष का रूप धारण किया हुआ है। वेद-शास्त्र कहते हैं कि यह संसारवृक्ष अनादि है, अव्यक्त जड़ों वाला है और इसकी चार त्वचाएँ (चार वेद अथवा चार अवस्थाएँ) हैं। इसके छः तने (छः शास्त्र) हैं, पचीस शाखाएँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, पाँच अपंचीकृत महाभूत, पाँच पंचीकृत महाभूत) हैं और इस वृक्ष में बहुत से पत्ते और फूल (वैदिक कर्म काण्ड) हैं। **'फल जुगल बिधि'** - इस वृक्ष के दो प्रकार के, मीठे और कड़ुए (सुख-दुःख रूपी कर्मफल) फल हैं।

'बेलि अकेलि' - इस वृक्ष पर एक बेल भी चढ़ी हुई है। तात्पर्य यह है कि जैसे सारी सृष्टि तो एक वृक्ष है; उसका रूप परमात्मा ने धारण किया है तो इसी जगत् के आश्रित इसी के चारों ओर जीवों की वासना रूपी बेल चढ़ी हुई है। इस वृक्ष पर बार-बार नये-नये पत्ते, फूल, फल निकलते रहते हैं। माने यह सृष्टि इसी प्रकार चलती रहती है, बनती रहती है, बिगड़ती रहती है। हे भगवान्! जिन आप और आपकी माया के द्वारा रची हुई, यह संसार-वृक्ष रूपी अद्भुत रचना है और आप इस सबके अव्यक्तरूप कारण हो; ऐसे भगवान् को हम प्रणाम करते हैं।

'जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य' - वेद कहते हैं कि कुछ लोग तो ऐसे निर्गुण ब्रह्म का ही ध्यान करते हैं, जो कि अज है, अद्वैत है, अनुभव से ही जाना जाता है और बुद्धि से परे

है। **'ते कहहुँ जानहुँ'** - वे लोग जो निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करते हैं, और उसे जानते भी हैं (हमने भी उस निर्गुण ब्रह्म का वर्णन किया है और जानते भी हैं), तो वे जानते हैं सो जानें; लेकिन हमें तो आपकी सगुण लीला और उसके सुन्दर चरित्र ही बहुत प्रिय लगते हैं। हम तो निरंतर उन्हीं का गान करते रहते हैं। **'करुनायतन प्रभु सदगुनाकर'** - हे करुणानिधान भगवन्! आप समस्त सद्गुणों के भण्डार हैं। हम आपसे बार-बार यही वरदान माँगते हैं कि मन, वाणी और कर्म से समस्त विकारों को छोड़कर हम आपके चरणों में प्रेम करें। माने हमारा चित्त शुद्ध होकर उसमें आपके प्रति परमभक्ति हो जाये।

इस प्रकार सबके देखते हुए वेदों ने भगवान् की बहुत सुन्दर, श्रेष्ठ स्तुति की और फिर वे अन्तर्धान होकर ब्रह्मलोक को चले गये।

वेदों की इस वन्दना से मालूम हो जाता है कि यह ऐतिहासिक रूप में जो भगवान् के राज्याभिषेक इत्यादि का वर्णन किया जा रहा है; यह ऐतिहासिकता तो कहने मात्र की है; यथार्थतः सब पारमार्थिक वर्णन है। परमात्मा क्या है, उसकी क्या-क्या महिमा है? उसका जगत् से, जीवों से क्या सम्बन्ध है? यहाँ पर वेद वही सब वर्णन करते हैं। साधक को इसी प्रकार अपने हृदय में परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में बीसवाँ नक्षत्र 'पूर्वाषाढ़ा' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की

यह बीसवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य – इस नक्षत्र का नाम पूर्वाषाढ़ा है। आषाढ़ का तात्पर्य पूर्णिमा भी है, और भगवान् श्रीरामजी का ऐश्वर्य जब **पूर्णता** को प्राप्त हुआ (भगवान् अयोध्या के राजसिंहासन पर बैठे) उसी समय **पूर्व** = प्रथम की हुई यह स्तुति है, इसलिये यह पूर्वाषाढ़ा स्तुति-नक्षत्र है।

३. आकार-रूप साम्य – नक्षत्र का आकार 'हाथ के पंखे' के जैसा है (कहीं-कहीं इसका आकार 'मंच' के जैसा भी कहा गया है)। इधर इस स्तुति में कहते हैं कि भगवान् जिसे कृपादृष्टि से देख लेते हैं वह तीनों प्रकार के दुखों (तापों) से छूट जाता है। माने संसारआतप से जलते हुए जीव को पंखे की हवा जैसी शीतलता प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार इस स्तुति एवं पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में नाम साम्य सिद्ध होता है।

४. तारे संख्या साम्य – इस नक्षत्र में चार तारे हैं, और चार वेदों ने ही यह स्तुति की है। यह तारे संख्या साम्य हो गया।

५. देवता साम्य – इस नक्षत्र का देवता 'आपः'= जल है। देखते हैं कि इस स्तुति में भी 'त्रैलोक पावनि सुरसरी' - तीनों लोकों को पवित्र करने वाली देवनदी गङ्गाजी (जल) हैं। यह स्तुति और नक्षत्र में देवता साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य – पूर्वाषाढ़ा **'मोक्ष'** पुरुषार्थ का नक्षत्र है। देखते हैं कि इस स्तुति के करने वाले वेद हैं, और वेद तो स्वयं 'श्रुति-सेतु' अर्थात् संसार-सागर से पार उतारने वाले सेतु के रूप में प्रसिद्ध हैं, माने वेद **मोक्ष** प्राप्ति में सहायक हैं। इसके अतिरिक्त इस स्तुति में भगवान् को 'भव खेद छेदन दच्छ' अर्थात् मायाजनित

संसार के दुखों से छुड़ाकर **मोक्ष** प्रदान करने वाले, कहकर प्रार्थना की गयी है। इस प्रकार नक्षत्र एवं इस स्तुति में पुरुषार्थ की दृष्टि से साम्य सिद्ध होता है।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - २१

शंभुकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड) - उत्तराषाढ़ा नक्षत्र

बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर।।१३ख।।

छं० - जय राम रमारमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहि जनं।।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो।।
दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महा महि भूरि रुजा।।
रजनीचर बृंद पतंग रहे। सर पावक तेज प्रचंड दहे।।
महि मंडल मंडन चारुतरं। धृत सायक चाप निषंग बरं।।
मद मोह महा ममता रजनी। तम पुंज दिवाकर तेज अनी।।
मनजात किरात निपात किए। मृग लोग कुभोग सरेन हिए।।
हति नाथ अनाँथनि पाहि हरे। बिषया बन पावँर भूलि परे।।
बहु रोग बियोगन्हि लोग हए। भवदंघ्रि निरादर के फल ए।।
भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते।।
अति दीन मलीन दुखी नितहीं। जिन्ह कें पद पंकज प्रीति नहीं।।
अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें। प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें।।
नहिं राग न लोभ न मान मदा। तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा।।
एहि ते तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा।।
करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ। पद पंकज सेवत सुद्ध हिएँ।।
सम मानि निरादर आदरही। सब संत सुखी बिचरंति मही।।

मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे।।
तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महागद मान अरी।।
गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं।।
रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं। महिपाल बिलोकय दीन जनं।।

दो० - बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग।।१४क।।
बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास।।१४ख।।

अर्थ सहित व्याख्या -

काकभुशुण्डिजी कथा सुनाते हुए कहते हैं कि हे गरुड़जी! सुनिये, उसके पश्चात् शङ्करजी वहाँ आये जहाँ पर भगवान् श्रीरामजी विराजमान थे और प्रसन्नता से गद्‌गद् हुई वाणी से भगवान् की स्तुति करने लगे। भक्तिभाव के अतिरेक के कारण उनका शरीर रोमाञ्चित हो रहा है।

देखते हैं कि सबकी स्तुतियाँ अपने-अपने व्यक्तित्व के स्तर के अनुसार हैं। भगवान् शङ्करजी की स्तुति देखकर मालूम होता है कि भगवान् शङ्करजी की भक्ति और ज्ञान की कितनी उच्च अवस्था है और कैसा समत्व भाव है? उसी समत्व भाव में शङ्करजी भगवान् राम की वन्दना करते हैं।

'जय राम रमारमनं' - हे भगवान् राम! आपकी जय हो, आप लक्ष्मीपति हैं। इस संसार के नाना प्रकार के क्लेशों से जीव संतप्त रहता है, इस संताप को दूर करने वाले आप ही हैं।

माने जिसका चित्त परमात्मा में स्थित हो जाये तो उसका संसार निवृत्त होकर; उसे शांति-विश्राम प्राप्त हो जाता है। और फिर व्यवहार के समय भी ऐसा व्यक्ति अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों से अविचलित रहता है; शांत रहता है।

हे भगवन्! इस संसार के भय से व्याकुल जीव की रक्षा कीजिये। आप अवधपति हैं, देवताओं के स्वामी हैं, लक्ष्मीपति हैं और आप सर्वव्यापक हैं। **माने जैसे आकाश में ही सब कुछ है, ऐसे ही उस परब्रह्म परमात्मा में ही समस्त लोक-लोकान्तर स्थित हैं।** आपकी शरण में आकर हे प्रभो! हम आपसे यही माँगते हैं कि आप हमारी रक्षा कीजिये।

'दससीस बिनासन बीस भुजा' - आपने दस सिर और बीस भुजा वाले रावण का विनाश कर दिया। आप हमारे हृदय में बैठे हुए निशाचरों का भी संहार करें। दस सिर और बीस भुजाओं का तात्पर्य व्यक्ति के, भौतिक रूप से बहुत शक्ति समृद्धि प्राप्त करके, उसका अहङ्कार भी होने से है। हे श्रीरामजी! आपने रावण रूपी इस पृथ्वी के बहुत भारी रोग को **'कृत दूरि'** - दूर कर दिया। शङ्करजी के मतानुसार मोह इस पृथ्वी के रहने वालों का सबसे बड़ा रोग है। यह बुद्धि को आच्छादित कर देता है, इसलिये जो मोहग्रसित है वह स्वयं अपने मोह को जान ही नहीं पाता। जब व्यक्ति मोह के जानकार (गुरु) के पास जाये, तो वे इसको लक्षणों के आधार पर पहचान कर, इसका उपचार बता सकते हैं।

शङ्करजी कहते हैं कि ये सब निशाचरों के समूह अगणित पतङ्गों के समान थे, वे सब आपके बाण रूपी अग्नि की प्रचण्ड ज्वाला में जल गये। माने भगवान् की शरण में जायें, तो मन

के असंख्य विकारों से छुटकारा मिल जाये; इसी में व्यक्ति का कल्याण है। **'महि मंडल मंडन चारुतरं'** - आप इस पृथ्वी के बड़े ही सुन्दर आभूषण हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान् की चर्चा, भगवान् की भक्ति, भगवान् का ज्ञान न हो, तो इस लोक की शोभा ही क्या है? आप श्रेष्ठ धनुष-बाण और तरकस धारण किये हुए हैं।

लङ्काकाण्ड में बता आये हैं कि काल तो भगवान् का धनुष है और लव-निमेष आदि उनके बाण हैं; तो भगवान् ने धनुष-बाण धारण किया हुआ है, माने **'काल'** भगवान् के वश में है और सारे संसार को इस काल से ही नाथे हुए हैं और उसी से सृष्टि में जितना भी अशुभ है, उसका विध्वंस होता जाता है।

'मद मोह महा ममता रजनी' - शङ्करजी कहते हैं कि मद, मोह, और ममता आदि विकार अज्ञान के कारण हैं, और इसीलिये रात्रि के समान हैं। माने जैसे रात्रि में अन्धेरे में कुछ दिखायी नहीं देता, ऐसे ही अज्ञान में अच्छे-बुरे का विवेक नहीं रहता। आपके तेजरूपी सूर्य की किरणें इस अज्ञान रूपी रात्रि के अन्धकार का नाश कर देती हैं। माने अगर भगवान् का स्मरण करें और वह हमारे हृदय में यत्किञ्चित भी प्रकट हों तो ये मद, मोह, आदि का अन्धकार मिट जाये और चित्त में प्रकाश छा जाये। अपने हृदय में समस्त सद्गुण आ जायें। यही सुन्दर व्यक्तित्व है।

'मनजात किरात' - ये **'काम'** एक बहेलिए की तरह से है जिसने कुभोग रूपी बाणों से मनुष्यों के हृदयों को वेध रखा है। माने विषयों को ही जीवन की एकमात्र सुखदायी वस्तु

मानकर उन्हीं के संग्रह और उन्हीं के भोग में पड़े रहना **'कुभोग'** है। इससे व्यक्ति के मानसिक रोग बढ़ते ही जाते हैं। हे भगवन्! इस बहेलिए को मारकर विषय रूपी वन में पशुओं की तरह भटकते हुए, हम अनाथ जीवों की रक्षा कीजिये। आप ही इस दयनीय दशा से हमारा उद्धार कर सकते हैं।

'बहु रोग बियोगन्हि लोग हए' - सब लोग बहुत से रोगों और वियोग दुःखों से पीड़ित हैं। आपके चरणों की ओर से जिन्होंने मुख मोड़ लिया और विषयों की ओर दौड़ पड़े; उनकी यही दशा होती है। देखें, कि रोग भी अनेक प्रकार के हैं; शारीरिक रोग भी हैं और मानसिक रोग भी हैं। इसी प्रकार वियोग भी कितने ही प्रकार का हो सकता है; अपने प्रिय व्यक्ति, वस्तु, धन आदि, सभी का वियोग लोगों को दुःख देता है। शङ्करजी कहते हैं कि हे भगवन्! जिनके हृदय में आपके चरण-कमलों के प्रति भक्ति नहीं, ज्ञान नहीं; उनकी यही दीन दशा है कि वे अथाह संसार सागर में डूब रहे हैं। **संसार** सागर कोई भौतिक सागर तो है नहीं; यह तो मेरे-तेरे की मानसिक रचना है, जो जीव स्वयं करता है और स्वयं ही उसका जाल अपने चारों ओर इस प्रकार फैला लेता है कि जैसे समुद्र बन गया। मानो उसे पार करना चाहो, तो वह अनन्त दिखायी देता है।

जो संसार-सागर में पड़े हैं वे सदा ही बहुत ही दीन और निकृष्ट बुद्धि वाले बने रहते हैं। शङ्करजी बार-बार विभिन्न शब्दों में बोल कर, इस तथ्य तक पहुँचाते हैं कि परमात्मा को भूलने का ही यह नतीजा है कि ऐसी दीन दशा हुई है। इसके माने इस दशा को सुधारना है, तो परमात्मा की शरण गहो।

'अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें' - हे भगवन्! जो लोग सदा आपकी लीलाओं, आपके गुणों का स्मरण करते हैं, जिनका यही सहारा है; उनको **'अनंत'** आप, और संत, दोनों सदा ही प्रिय लगते हैं।

तात्पर्य यह है कि संसार में दो प्रकार के व्यक्ति हैं; साधु और असाधु। अब जो साधु का साथ करें और उनमें प्रेम करें, तो जीवन का कल्याण है। और जो असाधु (संसारी व्यक्ति) का साथ करें, तो विनाश होगा। शङ्करजी कहते हैं कि जहाँ व्यक्ति आपकी शरण में आये, तो उनके हृदय में आसक्ति, लोभ, अभिमान और मद (भौतिक उपलब्धियों का नशा) समाप्त हो जाता है; और उनके लिये **'सम बैभव वा बिपदा'** - सम्पत्ति और विपत्ति समान हैं। गीता में भी जगह-जगह ऐसे समत्व भाव पर बड़ा बल दिया गया है; कहीं पर **'समलोष्टाश्मकाञ्चनः'** कहा, कहीं **'विद्याविनयसंपन्ने'** में समत्व भाव बोलते हैं और यहाँ तक कि १४वें अध्याय में तो भगवान् कह देते हैं कि सत्व, रजस, तमस में भी समभाव रखो; अपनी आंतरिक समता इनके कारण मत बिगड़ने दो।

शङ्करजी कहते हैं कि आपके चरणों में प्रेम रखने वालों को ऐसा समत्व सहज ही आ जाता है; इसीलिये मुनि लोग योग (प्राणप्रधान साधना) का भी भरोसा छोड़ कर बड़ी प्रसन्नता के साथ आपकी भक्ति ग्रहण करते हैं। **'करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ'** - जिनके हृदय में निरंतर आपका प्रेम रहता है, वे आपके चरण-कमलों की सेवा करते हैं; और उनका हृदय शुद्ध हो जाता है। ऐसे संत लोग फिर **आदर और निरादर को समान मानते हुए** पृथ्वी में विचरण करते हैं। माने ज्ञानी व्यक्ति या भक्त व्यक्ति

के अन्दर समत्वयोग आ जाता है और वह प्रसन्न होकर विचरता है। आनन्दमय जीवन जीने का यही तरीका है कि कहीं आसक्त होकर मत बैठो, मानसिक रूप से सबसे दूर रहते हुए निश्चिंत होकर बैठो।

अब भगवान् की एक ओर महिमा बताते हैं कि वे मुनियों का बड़ा आदर करते हैं **'मुनि मानस पंकज भृंग भजे'** - जो भक्त हैं, मुनि हैं उनके हृदय राग-द्वेष से रहित हैं; मानो कमल के समान निर्मल हैं। और भगवान् स्वयं उनके हृदय रूपी कमल में आकर भृंग की तरह से गुंजार करते रहते हैं; उन्हें याद करते रहते हैं। हे महान् रणधीर और अजेय, भगवान् श्रीरामजी! हम आपके नाम का जप करते हैं, आपको नमन करते हैं। आप इस संसार रूपी रोग की महान् औषधि हैं और **'मान अरी'** - अभिमान का विनाश करने वाले हैं।

आपमें समस्त सद्‌गुण हैं, आप शीलनिधान और कृपानिधान हैं; हे लक्ष्मीपति भगवान्! हम आपके चरणों में बार-बार वन्दना करते हैं। हे रघुनन्दन! आप सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों का नाश करने वाले हैं। हे भगवन्! आप महिपाल हैं, हम दीन जनों पर कृपादृष्टि डालिये।

हम आपसे बार-बार यही वर माँगते हैं कि हमें आपके चरणकमलों में अनअपायनी भक्ति प्राप्त हो और सदा सत्सङ्ग मिलता रहे। हे लक्ष्मीपति भगवान्! प्रसन्न होकर हमें यही वर दीजिये। **'बरनि उमापति राम गुन'**-इस प्रकार भगवान् श्रीरामजी की गुणगाथा का वर्णन करते हुए भगवान् शङ्करजी कैलाश को चले गये।

भगवान् ने देखा कि अब स्तुति करने वाले सब लोगों की स्तुतियाँ हो गयीं, तो अब आगे का कार्यक्रम चले। अब

भगवान् ने अपने सेवकों से कहकर, अपने साथ आये सब वानरों को सुखपूर्वक ठहरने के स्थानों की व्यवस्था की।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में इक्कीसवाँ नक्षत्र 'उत्तराषाढ़ा' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह इक्कीसवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का उत्तराषाढ़ा नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम उत्तराषाढ़ा है। आषाढ़ का एक अर्थ है पूर्णिमा = पूर्णता; और उत्तर = पश्चात्, तो जो स्तुति भगवान् के ऐश्वर्य की पूर्णता सिद्ध होने के तुरंत बाद की गयी प्रथम स्तुति (पूर्वाषाढ़ा) के **पश्चात्** की गयी, उसका नाम उत्तराषाढ़ा ठीक ही है।

३. आकार-रूप साम्य - उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का आकार हाथी के दो बाह्य दाँतों के समान है। हाथी को अपनी सुरक्षा का साधन उसके दाँत ही होते हैं, और देखते हैं कि यह स्तुति भवभय से रक्षा के लिये की गयी है, और इसमें 'पाहि जनं', 'पाहि प्रभो', 'पाहि हरे' कहते हुए, तीन बार रक्षा की प्रार्थना की गयी है। इस प्रकार यहाँ पर उत्तराषाढ़ा नक्षत्र एवं इस स्तुति में आकार-रूप की दृष्टि से साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य - इस नक्षत्र में तीन तारे हैं, और इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भी भजे, जपामि और नमामि के रूप में तीन तारे हैं।

५. देवता साम्य - इस नक्षत्र के देवता विश्वेदेवा हैं, जो सामान्य स्तर के देवताओं के लिये ऋग्वेद में प्रयुक्त एक समूहवाचक

नाम है, पुराणों में इन विश्वेदेवा की संख्या दस बतायी गई है। इनमें भाववाचक गुण सम्मिलित हैं जैसे सत्य, धृति, प्रभवान्, रोचमान्, कुरुवान्, क्रतु, काम आदि। देखते हैं कि इस स्तुति में तेज अनी (रोचमान्), बैभव (प्रभवान्), काम (मनजात) आदि शब्दों के द्वारा इन विश्वेदेवा का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से वर्णन है। इस प्रकार इस स्तुति एवं उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में देवता की दृष्टि से साम्य सिद्ध हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य - उत्तराषाढ़ा नक्षत्र **'मोक्ष'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। इस स्तुति में शिवजी कहते हैं कि "हे भगवन्! आप महानमद, मोह और ममतारूपी (अज्ञानरूपी) अन्धकार समूह के नाश के लिये **(ज्ञानरूपी)** सूर्य के तेजोमय किरणसमूह हैं"; और ज्ञान **'मोक्ष'** का साक्षात् साधन है - ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। और जो भक्त 'करि प्रेम निरंतर नेम लिएँ' अर्थात् प्रेमपूर्वक नियम लेकर निरंतर शुद्ध हृदय से आपके चरणकमलों की सेवा करते हैं, उनको मोक्ष तो प्राप्त है ही, ऐसा भगवान् ने गीताजी में स्वयं कहा है 'तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्' *हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-सागर से उद्धार करने वाला होता हूँ।* इस प्रकार इस स्तुति का सम्बन्ध भी **'मोक्ष** पुरुषार्थ से ही है। यह उत्तराषाढ़ा नक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच पुरुषार्थ की दृष्टि से साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - २२

सुग्रीवादिकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड) - अभिजित् नक्षत्र

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए।।
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे।।
परम प्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिधि बिधि ग्यान बिसेषा।।
प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं।।
तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए।।
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए।।
प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए।।
अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला।।

दो० - जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हियँ धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ।।१७क।।

अर्थ सहित व्याख्या -

भगवान् का यह उपदेश सुनकर वहाँ पर उपस्थित सब वानरादि सखालोग बड़े प्रसन्न हुए। भगवान् की बात सुनते-सुनते वे अपने आपे को भी भूल गये। भक्त लोग भगवान् का ध्यान चिंतन करते-करते उनके प्रेम में मग्न होते-होते **'को हम कहाँ बिसरि तन गए'** की दशा में पहुँच जाते हैं। माने उनका देहाभिमान छूट जाता है, देश-काल का विस्मरण हो जाता है; देहातीत, कालातीत दशा में पहुँच जाते हैं। यह **'भाव समाधि'** की दशा है।

वे लोग हाथ जोड़े हुए भगवान् की ओर दृष्टि लगाये हुए, बस देखते ही रह गये। इतने प्रेम मग्न हैं कि मुँह से कुछ कहते नहीं बनता और इस प्रेम के कारण बड़े आनन्द की अनुभूति भी उनको हो रही है।

भगवान् ने उनके इस परम प्रेम को पहचाना और उसके बाद भगवान् ने उन लोगों को **'बिबिधि बिधि ग्यान बिसेषा'** - बहुत प्रकार से आत्मज्ञान-परमात्मज्ञान की बातें सुनायीं। गीता में भी इसी प्रकार की बात आती है कि–

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

उन निरंतर मेरे ध्यान आदि में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तों को मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। माने शास्त्र का मत यही है कि भगवान् अपने अनन्य भक्तों पर जब प्रसन्न होते हैं, तो उन्हें आत्मज्ञान देते हैं। ज्ञान से यह भाव भी हो जाता है कि भगवान् तो सब जगह हैं; हमारे हृदय में भी हैं, फिर भगवान् से वियोग की कोई बात ही नहीं।

'प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं' - ये लोग भगवान् के सामने तो बैठे हुए हैं लेकिन उनसे कुछ कह नहीं पा रहे हैं। बार-बार प्रभु के चरणकमलों की ओर देखते हैं। तात्पर्य यह है कि ये वानर लोग मन ही मन भगवान् से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे भगवन्! ऐसी कृपा करो कि हम सदा आपके चरणों की सेवा में बने रहें; इन चरणों से हम कभी दूर न हों। आपने ज्ञान तो बहुत बताया लेकिन आपका प्रेम, आपकी निकटता आपका आनन्द तो हमसे भुलाये नहीं भूलता।

'तब प्रभु भूषन बसन मगाए' - भगवान् अब इन सबकी विदाई की तैयारी करने लगे। भगवान् ने फिर भरतजी से वस्त्र और आभूषण मँगवाये। ये वस्त्राभूषण अनेक रंगों के थे और उनमें मणियाँ इत्यादि जड़ी हुई थीं। सबसे पहले भगवान् की आज्ञा से भरतजी ने स्वयं अपने हाथ से सुग्रीव को वस्त्र और आभूषण पहनाये उसके बाद लक्ष्मणजी ने विभीषणजी को वस्त्र और आभूषण पहना दिये; भगवान् को वे सब वस्त्राभूषण बहुत अच्छे लगे।

अब अङ्गद की बारी थी लेकिन वे बैठे ही रहे, अपनी जगह से हिले तक नहीं। भगवान् ने देखा कि उसके हृदय में बहुत अधिक प्रेम है जिसके कारण वह जाना नहीं चाहता है, इसी कारण से यह उठ नहीं रहा है; ऐसी स्थिति में भगवान् ने भी उससे उठने को नहीं कहा।

जाम्बवान् और नल-नील आदि सब लोगों को भगवान् ने अपने हाथ से वस्त्रादि पहना दिये। उसके बाद भगवान् ने उन सबको विदा किया, तो उन सब लोगों ने भगवान् को प्रणाम किया और भगवान् के रूप को हृदय में धारण करके चल दिये।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - नक्षत्रों की सूची के अन्तर्गत, नित्य के धार्मिक व्यवहार में, अभिजित् नक्षत्र की गणना नहीं है (इसकी गणना न होने के कारण को विस्तार से जानने के लिये कृपया इस पुस्तक की प्रस्तावना देखिये), लेकिन ज्योतिष और धर्मशास्त्र में कभी-कभी इसका विचार किया जाता है। जिस प्रकार से यह

नक्षत्र २७ नक्षत्रों की सुची में प्रत्यक्ष नहीं है, इसी प्रकार से यह स्तुति भी प्रत्यक्ष शब्दों में नहीं है। यह भावमय निःशब्द स्तुति है। यह केवल मन में ही की गयी है।

देखते हैं कि आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में, अप्रत्यक्ष रहते हुए भी, २८ नक्षत्रों की गणना में बाईसवाँ नक्षत्र 'अभिजित्' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह बाईसवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का अभिजित् नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम अभिजित् है, अर्थात् सब ओर से जय देने वाला। देखते हैं कि इस स्तुति करनेवालों की सहायता से ही श्रीरघुनाथजी ने सब ओर से सहायता पायी - इसीलिये तो वसिष्ठजी कहते भी हैं कि 'भए समर सागर कहँ बेरे'। यह अभिजित् नक्षत्र एवं इस स्तुति के मध्य नाम साम्य हो गया।

३. आकार-रूप साम्य - नक्षत्र का आकार 'सिंघाड़े' के समान है। सिंघाड़े का छिलका काला होता है और छोर कँटीले होते हैं, जिसे हाथ में लेते डर लगता है; लेकिन छिलका निकालने पर उसके भीतर सफेद, स्वादिष्ट कंद होते हैं। इसी प्रकार से ये तीनों - वानरराज सुग्रीव, राक्षसराज विभीषण और ऋक्षराज जाम्बवान् देखने में भयावने, काले हैं लेकिन हृदय से श्रीरामजी के भक्त हैं। यह इस स्तुति का अभिजित् नक्षत्र के साथ आकार-रूप साम्य हो गया।

४. तारे संख्या - इस नक्षत्र में तीन तारे हैं। इसी प्रकार से इस स्तुति-नक्षत्र में भी वानरराज सुग्रीव, राक्षसराज विभीषण और ऋक्षराज जाम्बवान के रूप में तीन तारे हैं। इस प्रकार से यह तारे संख्या साम्य हो गया।

५. देवता साम्य - अभिजित् नक्षत्र के देवता सबसे वृद्ध विधि (ब्रह्माजी) हैं। इसी प्रकार से इस स्तुति के करने वालों में ब्रह्माजी के ही अवतार, सबसे वृद्ध जाम्बवान् हैं। यह देवता साम्य सिद्ध हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य - अभिजित् नक्षत्र **'काम'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। जिस प्रकार अभिजित् नक्षत्र अप्रकट रहता है, उसी प्रकार से इस स्तुति में **'काम'** पुरुषार्थ भी अप्रकट है। स्तुति में वर्णन है कि 'एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे।।' - वे प्रभु के आगे हाथ जोड़कर टकटकी लगाये देखते ही रह गये। अत्यन्त प्रेम के कारण कुछ कह नहीं सकते। तात्पर्य यह है कि ये सब वानरादि गण भगवान् को अतिशय प्रेम करते हैं और उन्हें अपने हृदय में बसा लेने की **कामना** रखते हैं।, इस अप्रकट पारमार्थिक कामना के आधार पर अभिजित् नक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच पुरुषार्थ साम्य सिद्ध हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - २३

अंगदकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड) - श्रवण नक्षत्र

तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रस बोरि।।१७ख।।

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो।।
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली।।
असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।।
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।।
तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा।।
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना।।
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ।।
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही।।

दो० - अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव।।१८क।।
निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ।।१८ख।।

अर्थ सहित व्याख्या -

'तब अंगद उठि नाइ सिरु' - जाम्बवान् और नील आदि के जाने के बाद अङ्गद उठे और भगवान् के चरणों में सिर नवाया, इतने ही कार्य में अङ्गद के नेत्रों में आँसू भर

आये; फिर अङ्गद हाथ जोड़कर और बड़ी ही विनम्रता के साथ, पूरी ताकत लगा कर, आग्रह करते हुए भगवान् से ऐसे वचन बोला - मानो प्रेम के रस में डुबाकर बोल रहे हैं।

कहते हैं कि अङ्गद ने यहाँ पर एक गलती कर दी; वह यह कि भगवान् ने अङ्गद से कुछ कहा नहीं लेकिन अङ्गद ने अपने मन से ही यह सोच लिया कि सबकी तरह अब मुझे भी विदा कर दिया जायेगा; इस डर के कारण से, अङ्गद स्वयं उठ कर भगवान् के पास जाकर प्रार्थना करने लगे। अगर अङ्गद अपने मन में पहले ही आश्वस्त रहते कि मुझे तो जाना ही नहीं है और अपने आनन्द में बैठे रहते, तो (हृदय के भाव भगवान् से छिपे नहीं हैं) बात दूसरी हो जाती। विश्वास की बात ही अलग है। भगवान् ने भी अङ्गद के भाव के अनुसार (कि वह जाने से डर रहा है) उत्तर दिया।

अङ्गद प्रार्थना करता है कि हे भगवन्! आप तो सर्वज्ञ हैं; सबके हृदय की बात जानते हैं। आप कृपानिधान हैं और आनन्द के सिंधु हैं; इसलिये कृपा करके उस आनन्द में से एक बूँद आनन्द मुझे भी दे दीजिये।

'दीन दयाकर आरत बंधो' - आप तो दीनों के ऊपर दया करने वाले हैं और दुखी लोगों के सहायक हैं। (ध्यान रखें कि जो भगवान् के लक्षण हैं, वही संतों के लक्षण हैं।) अब अङ्गद कहता है कि हे नाथ! मरते समय मेरे पिता बालि मुझे आपके ही सुपुर्द कर गये थे। अब आप मुझे अपनी सेवा में ही रखिये; छोड़िये नहीं। हे भगवन्! जिसकी कोई शरण नहीं उसकी आप ही शरण हो; यह आपकी प्रतिज्ञा है, इसे आप स्मरण करेंगे तो आप मुझे अपनी शरण में रखे रहेंगे।

आप तो भक्तों के हितकारी हैं, तो आप मुझे जाने को मत कहिए।

'मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता' - आप ही मेरे माता-पिता हैं; आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपका सेवक हूँ, आप ही मेरे गुरु हैं - जब सारे सम्बन्ध आपसे ही हैं, तो आपको छोड़कर मैं और कहाँ जा सकता हूँ?

हे भगवन्! आप ही बताइये कि आपको छोड़कर घर में मेरा क्या काम है? हे प्रभु! इस दीन सेवक को - ज्ञान, बुद्धि और बल से हीन, अपना बालक जानकर यहीं अपनी शरण में रख लीजिये। **'नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ'** - हे भगवान्! यहाँ पर मैं आपके घर के छोटे-मोटे सब काम करूँगा और आपके चरणकमलों के दर्शन करते-करते संसार-सागर (राग-द्वेषात्मक जीव भाव) से छुटकारा पा जाऊँगा। ऐसा कहकर वह भगवान् श्रीरामजी के चरणों में गिर कर कहने लगा - हे भगवान्! मेरी रक्षा करो। हे नाथ! अब आप मुझसे यह वाक्य मत कहना कि **'अङ्गद अब तुम अपने घर जाओ।'**

अङ्गद के विनम्र वचन सुनकर करुणा की सीमा भगवान् ने उसे उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और भगवान् के कमलनयनों में भी प्रेम के अश्रु भर आये। और जैसा कि अङ्गद ने आरम्भ में कहा था कि **'प्रभु सर्बग्य'** तो भगवान् ने भी देख लिया कि अङ्गद में भक्ति तो खूब है लेकिन इसका हृदय अंदर ही अंदर युवराज पद से बँधा हुआ है, भले ही इसे स्वयं पता न हो। और **'निज उर माल बसन मनि'** - उसके बाद भगवान् ने अङ्गद को अपने गले की माला ही पहना दी और उसे मूल्यवान वस्त्र और आभूषण भी पहनाये। फिर भगवान् ने उसको

बहुत प्रकार से समझा दिया। माने भगवान् ने अङ्गद को समझायां कि किष्किन्धा में युवराज के रूप में भी तुम्हारे कुछ कर्त्तव्य हैं; तुम्हें उनका भी पालन करना चाहिए। कर्म का भी ध्यान रखो, उपासना (भक्ति) का भी ध्यान रखो और ज्ञान का भी ध्यान रखो; जीवन में सभी का संतुलन रखो। एक को भुलाकर, दूसरे से थोड़े ही काम चलेगा।

गीता में भी भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि निष्काम-कर्मयोग, उपासना, ज्ञान सब क्रम-क्रम से करो; सब हो जायें, तो इन सबको साथ-साथ करो। ये जीवन का सही स्वरूप अङ्गद को अच्छी तरह से समझा कर भगवान् ने उसे विदा कर दिया।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में तेईसवाँ नक्षत्र 'श्रवण' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह तेईसवीं स्तुति है। इस प्रकार इस स्तुति का श्रवण नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम श्रवण है। इस स्तुति के प्रारम्भ में ही अंगद कहते हैं कि 'सुनु' अर्थात् श्रवण कीजिये, लेकिन देखते हैं कि यह एक ही स्तुति ऐसी है, जिसमें स्तुतिकर्ता की प्रेमपूर्ण याचना भगवान् ने बिलकुल ही नहीं सुनी। अंगदजी इस स्तुति में कह रहे हैं कि 'अब जनि नाथ कहहु गृह जाही' *हे नाथ! अब यह न कहिये कि तू घर जा।* लेकिन उन्हें यही अप्रिय बात सुननी पड़ी। इस प्रकार इस स्तुति का **श्रवण** नाम सार्थक है।

३. आकार-रूप साम्य - श्रवण नक्षत्र का आकार **तीन चरण चिह्न** (वामन भगवान् के तीन चरण चिह्न) है। वामन भगवान्

ने तीन बार चरण रखा था। देखते हैं कि इस स्तुति में भी वामन भगवान् के तीनों चरणों का प्रतीकात्मक वर्णन है। 'पद जल जाता' से वह पहला चरण सूचित किया जिसे ब्रह्माजी ने धोया था, तो 'नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावन सुरसरी' प्रादुर्भूत हुई थी। 'पदपंकज' से दूसरा चरण सूचित किया जो वामन भगवान् ने पृथ्वी पर रखा था, और 'चरन' से वह तीसरा चरण सूचित किया है, जिससे बलि को पाताल भेज दिया था। और जैसे बलि को पाताल जाना पड़ा, वैसे ही इन चरणों की आज्ञा से अंगद को अपनी इच्छा के विरुद्ध वापिस किष्किन्धा जाना पड़ा। यह श्रवणनक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच आकार-रूप साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य - श्रवण नक्षत्र में तीन तारे हैं, और इस स्तुति में भी 'पद जल जाता', 'पद पंकज' और 'चरन' के रूप में तीन तारे हैं।

५. देवता साम्य - श्रवण नक्षत्र के देवता विष्णु हैं। विष्णु का अर्थ है - सर्वव्यापी, सबका पालन-पोषण करने वाले। इस स्तुति में भगवान् को 'सर्बग्य' कहा है - सर्वज्ञ तो वही हो सकता है जो सर्वव्यापी हो। तथा स्तुति में अंगद कहते ही हैं कि मरते समय मेरे पिता मेरा पालन-पोषण आपको ही सौंप गये थे। इस प्रकार से इस स्तुति में भगवान का 'विष्णुत्व' प्रकट हो रहा है, और इसी से श्रवण नक्षत्र और इस स्तुति में देवता साम्य सिद्ध हो रहा है।

६. पुरुषार्थ साम्य - श्रवण नक्षत्र **'अर्थ'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। अर्थ की प्राप्ति उद्यम के फलस्वरूप होती है। इस स्तुति में अंगद अपनी ओर से पूरा उद्यम करते हैं कि भगवान् उन्हें अपने पास से जाने को न कहें, लेकिन अंगद अपने इस पुरुषार्थ में

सफल नहीं होते। परंतु भगवान् अपने हृदय की माला, वस्त्र, मणियों के आभूषण के रूप में **'अर्थ'** प्रदान करते हैं; इस प्रकार यह स्तुति भी अर्थ पुरुषार्थ से सम्बन्धित है।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - २४

पुरजनकृत प्रथम स्तुति (उत्तरकाण्ड) - धनिष्ठा नक्षत्र

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं।।
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि।।
जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि।।
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संत कंज बन रबि रनधीरहि।।
काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि।।
लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। मनसिज करि हरि जन सुखदातहि।।
संसय सोक निबिड़ तम भानुहि। दनुज गहन घन दहन कृसानुहि।।
जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भव भीरहि।।
बहु बासना मसक हिम रासिहि। सदा एकरस अज अबिनासिहि।।
मुनि रंजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि।।

दो० - एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान।
सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान।। ३०।।

अर्थ सहित व्याख्या -

अवधपुरी में सभी जगह, सब लोग भगवान् के गुण गाते रहते हैं और सब बैठकर एक दूसरे को सदा यही शिक्षा दिया करते हैं कि शरणागतों के रक्षक भगवान् श्रीराम को भजो; शोभा, शील, रूप और गुणों के धाम भगवान् श्रीराम को भजो। ये लोग नित्य ऐसी सीख देते हैं, तो तात्पर्य यह है कि आध्यात्म विद्या ऐसी है कि 'रामकथा जे सुनत अघाहीं। रस विशेष जाना

तिन्ह नाहीं' - माने जो भगवान् की कथा सुनकर अघा गया और कहे कि हमने जान ली पूरी बात; तो समझो उसने कुछ जाना ही नहीं। भगवान् की कथा श्रवण तो उपासना है; और उपासना बार-बार दोहरायी जाती है। गीता में भी इसी प्रकार की बात आती है—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।

नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।।

वे दृढ़निश्चयवाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्ति के लिये यत्न करते हुए और बार-बार मुझको प्रणाम करते हुए सदा मेरे ध्यान से युक्त होकर, अनन्य प्रेम से मेरी उपासना करते हैं। यहाँ पर भी देखते हैं कि अयोध्यावासी धर्म, परमार्थ में इतने मग्न हैं कि परस्पर वही चर्चा करते हैं।

तुलसीदासजी भगवान् की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि भगवान् के नेत्र कमल के समान हैं और **'स्यामल गातहि'** - उनका शरीर श्यामवर्ण का है। वे भगवान् श्रीरामजी अपने **सेवक** की रक्षा इस प्रकार करते हैं जैसे आँखें पलकों की रक्षा करती हैं।[1] भगवान् सुन्दर धनुष, बाण और तरकस धारण करने वाले हैं; उनका स्मरण करो। संतों के हृदयकमल को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य के समान जो रणधीर भगवान् हैं; उनका स्मरण करो। वे हमारे हृदय में आकर, यहाँ के सब निशाचरों को भी नष्ट कर देंगे।

---

१. भगवान् के सेवक का अर्थ है कि जो व्यक्ति सारे जगत् को भगवान् का रूप समझकर सारे समाज की सेवा में लगा रहता है।

'काल कराल ब्याल खगराजहि' - कालरूपी भयङ्कर सर्प को खा जाने वाले गरुड़ के समान भगवान् श्रीरामजी को भजो। माने व्यक्ति की प्रारब्ध चाहे जितनी भयङ्कर (सर्प जैसी) हो, भगवान् उसके प्रारब्ध रूपी सर्प को गरुड़ के समान खा जायेंगे और व्यक्ति को शांति प्रदान करेंगे। जो भगवान् को निष्कामभाव से भजता है, भगवान् उसकी **'ममता जहि'** - ममता (आसक्तियों) का नाश कर देते हैं। लोभ-मोह रूपी मृगों के लिये भगवान् राम बहेलिये के समान हैं। माने इन पशुप्रवृत्तियों को वे विनष्ट कर देते हैं।

बालकाण्ड में भगवान् द्वारा शिकार करने की कथा आती है; उसका तात्पर्य भी यही है। इसी प्रकार कहीं पर **'पशुबलि'** की प्रथा दिखायी देती है - यह भी पशु-प्रवृत्तियों को बलि चढ़ाने का प्रतीक है। मांसभक्षी पामर (तामसिक) मनुष्य को धर्म के मार्ग पर चलाना है, तो जहाँ वह है, वहीं से प्रतीक लेकर उसे दिखाने पड़ेंगे। जैसे गीता में भगवान् ने अर्जुन को वैराग्य की शिक्षा दी तो कहा कि **'असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा'** क्योंकि अर्जुन शस्त्र की भाषा सरलता से समझता था। लेकिन दूसरों की बीमारी की दवा हमें नहीं खानी चाहिए। गीता में ही कहा गया है कि स्वधर्म में मरना भी श्रेयस्कर है।

'मनसिज करि हरि जन सुखदातहि' - हमारे हृदय में और दोष तो छोटे पशुओं के समान हैं लेकिन कामना तो सबसे जबरदस्त पशु **'हाथी'** के समान है और इस कामनारूपी हाथी को मारने के लिये भगवान् राम सिंह के समान हैं। संशय और शोक रूपी घने अन्धकार को नाश करने के लिये भगवान् सूर्य के समान हैं और हमारे हृदय में जो लोभ-मोहादि निशाचरों का घना वन तैयार हो गया है; भगवान् उसे जला डालने के

लिये दावानल की तरह से हैं। ऐसे भवसागर के भय से उबारने वाले भगवान् श्रीसीतारामजी को क्यों नहीं भजते?

अयोध्यावासी कहते हैं कि हमारी ढेरों सांसारिक वासनाओं रूपी मच्छरों को नष्ट करने के लिये भगवान् बर्फ़ के ढेर के समान हैं। ये भगवान् श्रीराम स्वरूपतः तो नित्य एकरस, अजन्मा और अविनाशी ब्रह्म हैं। वही निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप से अवतार लेकर जो लीलाएँ कर रहे हैं; उनका वर्णन करके मुनि लोग बड़ा सुख पाते हैं। इसलिये निशाचरों को मारकर पृथ्वी का भार उतारने वाले; तुलसीदास के प्रभु, भगवान् श्रीरामजी को भजो।

इस प्रकार अयोध्या के स्त्री-पुरुष श्रीरामजी का गुण-गान करते हैं और कृपानिधान भगवान् श्रीरामजी सदा सब पर प्रसन्न रहते हैं; सब पर कृपा करते हैं। सङ्केत यह है कि भगवान् तो अपनी कृपा करते ही रहते हैं; जरूरत यह है कि भक्त भगवान् की शरण में जाये। जैसे समुद्र पर हवा तो चलती रहती है; यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह उस हवा से लाभ उठाये - वह पाल खोले तो! भगवान् से जुड़े तो!

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में चौबीसवाँ नक्षत्र 'धनिष्ठा' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह चौबीसवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का धनिष्ठा नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम धनिष्ठा है। धनिष्ठा का अर्थ है - सबसे अधिक धनवती। जगत् में परम धनवती नगरी

अयोध्या है, और इसी नगरी के लोगों के द्वारा की गयी यह स्तुति है, तो यह स्तुति भी 'धनिष्ठा' ही हुई।

३. आकार-रूप साम्य – नक्षत्र का आकार 'ढोल' की तरह का है। जैसे ढोल पीट-पीट कर राजाज्ञा नगरवासियों को सुनायी जाती है, वैसे ही यह स्तुति ढिंढोरा सा पीटती है कि 'भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि', 'सोभा सील रूप गुन धाम' को भजो, 'पलक नयन इव सेवक त्रातहि' को भजो, 'काल कराल ब्याल खगराजहि' को भजो। इस प्रकारसे प्रत्येक पंक्ति में बार-बार भगवान् श्रीराजी को भजने की आज्ञा सुनायी जा रही है। यह इस स्तुति का धनिष्ठा नक्षत्र से आकार-रूप साम्य स्थापित हो गया।

४. तारे संख्या साम्य – धनिष्ठा नक्षत्र में चार तारे हैं, इसी प्रकार से इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में 'सोभाधाम', 'सीलधाम', 'रूपधाम' और 'गुनधाम' के रूप में चार तारे हैं।

५. देवता साम्य – धनिष्ठा नक्षत्र के देवता 'वसु' हैं। वसु = वैभव, और इस स्तुति से ठीक पहले वाले दोहे में ही कहा गया है कि 'अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ' – *अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ और समस्त सुख सम्पत्तियाँ अयोध्या में सदैव छायी रहती हैं,* और इस स्तुति के करनेवाले इसी वैभवपूर्ण अयोध्या नगरी के वासी हैं। इस प्रकार इस स्तुति का धनिष्ठा नक्षत्र से देवता साम्य सिद्ध हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य - धनिष्ठा नक्षत्र **'धर्म'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है, और इस स्तुति को करने वाले अयोध्यावासी हैं, जिनके विषय में इससे पूर्व गोस्वामीजी स्पष्ट कह आये हैं कि ये लोग 'चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती' तथा 'सब निर्दंभ धर्मरत पुनि। नर अरु नारि चतुर सब गुनी' अर्थात् अवधपुरी के लोग

धर्मपरायण हैं, सद्‌गुणों से युक्त हैं। इसीलिये तो ये सबलोग स्वयं तो निरंतर भगवान् के गुण गाते ही रहते हैं, साथ ही दूसरों को भी इस धर्ममय आचरण के लिये प्रेरित कर रहे हैं। इस प्रकार यह स्तुति भी धर्म पुरुषार्थ से सम्बन्धित है।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - २५

सनकादिककृत स्तुति (उत्तरकाण्ड) - शताभिषक् नक्षत्र

सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी।।
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय।।
जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुंदर अति नागर।।
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर।।
ग्यान निधान अमान मानप्रद। पावन सुजस पुरान बेद बद।।
तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन।।
सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय।।
द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय। ह्रदि बसि राम काम मद गंजय।।

दो० - परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम।। ३४।।

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि।।
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु।।
भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुख दायक।।
मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता बिस्तारय।।
आस त्रास इरिषादि निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक।।
भूप मौलि मनि मंडन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी।।
मुनि मन मानस हंस निरंतर। चरन कमल बंदित अज संकर।।
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक। काल करम सुभाउ गुन भच्छक।।

तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन।।

दो० - बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ।

ब्रह्म भवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ।।३५।।

अर्थ सहित व्याख्या -

अब सनतकुमार लोग भगवान् की स्तुति करते हैं, ये लोग तो ब्रह्मस्वरूप हैं, वेदस्वरूप हैं; इन लोगों द्वारा की गयी स्तुति हम सब लोगों के लिए एक नमूना है कि इसी प्रकार की प्रार्थना हमें भी करनी चाहिए। इसमें पहली बात तो यह है कि भगवान् कैसे हैं? उनके सगुण रूप, निर्गुण रूप का स्मरण करें और यह भी स्मरण करें कि भगवान् के प्रभाव से किस प्रकार हमारा कल्याण होता है। अंत में भगवान् से यह प्रार्थना करें कि हे भगवन्! हमको अपनी अनअपायनी भक्ति प्रदान करो। भगवान् से सांसारिक वस्तुएँ माँगना तो नासमझी की बात है। इसलिये देखें कि सनतकुमार कैसे भगवान् का स्मरण करते हैं।

'सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी' - भगवान् की यह बात सुनकर ये चारों सनतकुमार बड़े प्रसन्न हुए और बड़े गद्गद भाव से भगवान् की स्तुति करने लगे। वे कहते हैं कि हे भगवान्! आपकी जय हो। आप अनन्त (देश काल, वस्तु, अपरिच्छिन्न) हैं, अविद्या इत्यादि विकारों से रहित हैं, परम पवित्र हैं। आप यद्यपि निर्गुण रूप से एक हैं लेकिन सगुण (विराट रूप) रूप में आप ही अनेक रूप धारण कर लेते हैं। हे भगवन्! आप करुणानिधान हैं। **'जय निर्गुन'** - हे भगवन्! आप गुणातीत हैं; और फिर आप गुणों के सागर भी हो - आपकी जय हो। आप सुख के समुद्र हैं, अत्यन्त सुन्दर भी हैं और आप बहुत चतुर

हैं; ज्ञान-निधान हैं। हे लक्ष्मीपति! आपकी जय हो। हे पृथ्वी के भार उतारने वाले! आपकी जय हो। आपके समान दूसरा कोई नहीं; आप एक, अद्वितीय हैं। आप अजन्मा, अनादि और शोभा की खान हैं।

'ग्यान निधान अमान मानप्रद' - आप ज्ञान के निधान हैं और आपको अपना तो कोई अहङ्कार नहीं है लेकिन आप दूसरों को सम्मान देने वाले हैं। सारे वेद और पुराण इत्यादि आपका पदित्र यश गाते हैं। आप **'तग्य'** - माने तत्त्व के ज्ञाता हैं और दूसरों की, की हुई सेवा के लिये कृतज्ञता मानने वाले हैं। **'अग्यता भंजन'** - माने भगवान् का स्मरण करें, तो भगवान् अज्ञान का नाश कर देते हैं। यद्यपि आपके नाम अनेक हैं लेकिन आप स्वयं अनाम हैं। तात्पर्य यह है कि नाम तो किसी रूप का ही होता है किन्तु अरूप (निर्गुण) परमात्मा का नाम कैसे हो? लेकिन वही भगवान् सगुण साकार रूप में प्रकट हुआ, तो उसके लक्षणों के अनुसार उसके अनेक नाम भी हो गये। हे भगवान्! वास्तव में तो आप मायारहित, निर्विकार हैं।

'सर्ब सर्बगत' - सब कुछ आप ही हैं, आपके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। आप सारे जगत् में व्याप्त हैं और सबके हृदय में भी आप वास करते हैं। हे भगवन्! आप सदा हमारी रक्षा करें। ये राग-द्वेष, शुभाशुभ कर्म, जन्म-मृत्यु आदि द्वन्द्व हमें खाये जा रहे हैं; आप इनका विनाश कर दीजिये। और हमारी विपत्तियों का, हमारे संसार रूपी बंधन का भी विनाश कर दीजिये; इसी में हमारी रक्षा है। हे भगवन्! आप सदा हमारे **'हृदि बसि'** - हृदय में वास करते रहिये और हमारे में जो कामना और मद आदि निशाचर बस रहे हैं, कृपया इनका विनाश कर दीजिये।

'परमानंद कृपायतन' - हे भगवान्! आप परमानन्द स्वरूप हैं और सब पर कृपा करने वाले हैं। हे पूर्णकाम भगवन् श्रीरामजी! हम आपसे यही वरदान चाहते हैं कि आप हमें अपनी प्रेम स्वरूपा भक्ति दीजिये और वह भी **'अनपायनी'** भक्ति हो, माने जो भक्ति कभी मिटे नहीं, सदा बनी ही रहे।

गोस्वामीजी का मत है कि सनतकुमार यद्यपि ब्रह्मानन्द में लीन हैं तथापि भक्ति ही माँगते हैं। भक्ति के माने हैं कि सदा उसी परमात्म भाव में रहें, उसे छोड़ें नहीं।

एक बार स्तुति करने के बाद में सनकादि दोबारा फिर से स्तुति करते हैं। वे कहते हैं कि हे भगवन्! आप हमें परम पवित्र भक्ति प्रदान करिए। भक्ति में प्रेम और भगवान् के प्रति समर्पण भाव तो है ही, साथ ही पवित्रता भी बतायी। माने जिसके हृदय में भक्ति आती है, वह समस्त पापों (अज्ञान) से मुक्त होकर स्वयं पवित्र हो जाता है और उसमें अन्य लोगों को भी पवित्र करने की सामर्थ्य आ जाती है। यह भक्ति तीनों प्रकार के तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक ताप) को दूर करने वाली है और इसमें **'भव दाप'** भी नहीं है। माने संसार फिर उसे डराता नहीं है; ये सब राग-द्वेषादि विकार शांत हो जाते हैं।

'प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु' - हे भगवान्! जो लोग आपकी शरण में आते हैं उनकी कामनाओं को पूर्ण करने के लिये आप कामधेनु और कल्पवृक्ष के समान हैं।[1] स्वर्ग से भी ऊपर परमार्थ के क्षेत्र में (जब व्यक्ति के हृदय में भक्ति आ जाती है) व्यक्ति को विषयभोगों से वैराग्य हो जाता है और

---

१. स्वर्ग में, जीव के पुण्य ही कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं और वहाँ पर वास करने वाले जीव जो भी कामना करते हैं, वह उन्हें उनके कर्म के फल के अनुसार प्राप्त होती है।

कामनाओं की पूर्ति की क्या बात? उसकी कामनाएँ ही समाप्त हो जाती हैं। **परमात्मभाव प्राप्त हो गया, तो सारा जगत् भी अपने अन्दर ही दिखायी देने लगा, तो फिर कुछ भी अप्राप्त नहीं रह गया; अब कामना हो ही नहीं सकती। इस प्रकार से भक्ति कल्पवृक्ष बन गयी।**

'भव बारिधि कुंभज रघुनायक' - हे रघुनायक! आप संसार-समुद्र को पी जाने के लिये अगस्त्य ऋषि की तरह से हैं, माने आप कृपा करें तो हमारा संसार-समुद्र सूख जाये। आपकी सेवा करने से व्यक्ति के समस्त दुःखों का निवारण हो जाता है और उसे सुख ही सुख प्राप्त होते हैं।

यहाँ पर इस बात का भी सङ्केत है कि यदि व्यक्ति चाहे कि उसका संसार (राग-द्वेष आदि विकार) भी बना रहे और उसके हृदय में परमात्मा भी आ जाये; तो ये दोनों विपरीत बातें एक साथ सम्भव नहीं हैं।

'मन संभव दारुन दुख दारय' - आप मन से उत्पन्न होने वाले दारुण दुःखों का विनाश कीजिये। हे भगवन्! आप दीनों के ऊपर कृपा करने वाले हैं, हमारे ऊपर भी कृपा कीजिये कि हमारे हृदय में समत्व भाव आ जाये। माने हमसे कोई वैर भाव रखे अथवा मित्र भाव रखे; परंतु हमारी तरफ़ से सबके प्रति समभाव हो। देखते हैं कि सनकादि नाना-प्रकार से यही बात कहते हैं, जिसका भाव है कि अपने हृदय में राम-राज्य आ जाना चाहिए। वही गुण अपने में आ जायें। सनतकुमार आगे कहते हैं कि हे भगवन्! आपकी कृपा हो तो **'आस त्रास इरिषादि'** - सब कामनाएँ, सारे भय और ईर्ष्या इत्यादि मानसिक विकारों का निवारण हो जाये और इनके स्थान पर विनय,

विवेक और वैराग्य हमारे हृदय में आ जायें। **'भूप मौलि मनि मंडन धरनी'** - हे राजाओं के शिरोमणि एवं पृथ्वी के रक्षक भगवान् श्रीरामजी! हमें अपनी वह भक्ति दीजिये जो संसार रूपी नदी को पार करने के लिये नौका के समान है।

ज्ञान का सिद्धान्त है कि जब व्यक्ति विचार करते-करते आत्मज्ञान प्राप्त करेगा तब संसार-सागर से पार होगा; भक्ति का सिद्धान्त यह है कि भगवान् की शरण में गये, उन्हीं के आश्रित रहे, तो भगवान् की कृपा से यह संसार-सागर समाप्त हो जाता है।

'मुनि मन मानस हंस निरंतर' - हे भगवन्! आप मुनियों के मन रूपी मानसरोवर में हंस के समान निरंतर वास करने वाले हैं। माने मुनियों को व्यवहार काल में भी भगवान् का स्मरण निरंतर बना रहता है, तो उन्हें भगवान् की कृपा भी निरंतर प्राप्त होती रहती है। गीता में भगवान् कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्!

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ। माने अगर तुम हमें याद करोगे, तो हम भी तुम्हें दस गुना याद करेंगे। मुनियों के हृदय रूपी मानसरोवर में भगवान् हंस के समान (ज्ञानवान्, विवेकवान्, निर्लेप और असङ्ग होकर) विचरण करते रहते हैं।

हे भगवान्! ब्रह्माजी और शङ्करजी भी आपके चरण कमलों की निरंतर वन्दना करते हैं। आपके चरणों की महिमा को समझकर हम निरंतर आपके चरणों का ध्यान करते हैं। आप रघुवंश जैसे बड़े प्रतापी वंश में भी पताका के समान सर्वोपरि हैं और संसार रूपी समुद्र के ऊपर जो श्रुतियों रूपी पुल है,

उसके आप ही रक्षक हैं। **इस श्रुतिरूपी सेतु में पहले कर्मकाण्ड की बातें हैं, फिर उपासना है उसके बाद ज्ञान है; इस तरह क्रम से आगे बढ़ते जायें और अंततः परमात्मा तक पहुँच गये, तो मानो इस पुल पर चलकर संसार सागर के पार हो गये; इससे छुटकारा हो गया।** मीरा कहती हैं कि इस संसार-सागर की तरफ़ देखो तो बड़ा भयङ्कर दिखायी देता है, लेकिन जब इसे पार करके फिर पीछे मुड़ कर देखो; तो कहीं कोई सागर ही नहीं है - सब कल्पना थी; ऐसा दिखायी देता है।

'काल करम सुभाउ गुन भच्छक' - सनतकुमार कहते हैं कि हे भगवन्! आपकी कृपा हो, तो जीव के लिये बंधनकारी काल, कर्म, गुण और स्वभाव नष्ट हो जायें।[१] हे भगवन्! आप तो नित्य मुक्त स्वरुप हैं और इसी कारण दूसरों को भी मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। जीव के सब दोषों को आप हरण करने वाले हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि सनतकुमारों ने तीनों लोकों के स्वामी, मेरे प्रभु भगवान् श्रीरामजी की, इस प्रकार से बार-बार स्तुति की और उन्हें सिर नवाते हुए अपना अभीष्ट वर (परमात्मा में ही निरन्तर चित्त लगा रहे, ऐसी अनअपायनी भक्ति) प्राप्त करके, ये लोग भी अपने वासस्थान ब्रह्मलोक को चले गये।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में पच्चीसवाँ नक्षत्र 'शताभिषक' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह पच्चीसवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का शताभिषक नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

१.जीव के कारण शरीर में जिस गुण की प्रबलता होगी वैसा ही उसका स्वभाव होगा और वैसे ही शुभाशुभ कर्म करेगा और उन कर्मों का फल भोगने के लिये कालांतर में वैसा ही शरीर धारण करेगा।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम शतभिषक है। भिषज् माने रोग को जीतने वाला अथवा चिकित्सक। श्रीरामचरितमानस में अनेक मानस रोगों को शारीरिक रोगों का प्रतीक बताया है, और वहीं पर यह भी कहा है कि 'राम कृपाँ नासहिं सब रोगा'। यहाँ पर भी उन्हीं - अज्ञान, राग-द्वेषादि द्वंद्व, काम, मद, भवभय, त्रिबिध ताप, आस, त्रास, इरिषा इत्यादि मानसिक रोगों को गिना-गिना कर भगवान् श्रीरामजी को उन सब **रोगों से मुक्ति दिलाने वाला** बताया गया है। इस प्रकार से इस स्तुति-नक्षत्र का भी, शतभिषक नाम सार्थक सिद्ध होता है।

३. आकार-रूप साम्य - शतभिषक नक्षत्र का आकार एक गोल चक्र के जैसा है। मध्य में एक बड़ा तारा है और चारों ओर अनेक (शत) छोटे-छोटे तारे हैं। इसी प्रकार इस स्तुति में प्रमुखरूप से भगवान् श्रीरामजी के प्रति प्रेमाभक्ति केन्द्रबिन्दु है और अन्य बातें इसी के चारों ओर घूमती हैं। इस प्रकार से यह नक्षत्र और स्तुति के बीच आकार-रूप साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य - कुछ ग्रन्थों में इस नक्षत्र में सौ तारे बताये गये हैं, लेकिन कुछ ग्रन्थों में इस नक्षत्र में एक ही बड़ा तारा कहा गया है। वास्तव में इसमें बीच में एक बड़ा तारा एवं साथ में बहुत छोटे-छोटे अनेक तारे उसके चारों ओर हैं। स्तुति में भी 'अनेक एक करुनामय' कहा है। इस प्रकार से शतभिषक नक्षत्र एवं इस स्तुति के मध्य तारे संख्या साम्य सिद्ध होता है।

५. देवता साम्य - इस नक्षत्र का देवता 'वरुण' है और वरुण जल का देवता है। देखते हैं कि इस स्तुति में 'गुन सागर', 'भव बारिधि', 'संसृति सरि' और 'मुनि मन मानस' - अर्थात् सागर, नदी और सरोवर के रूप में ये तीन प्रकार के जलाशय

हैं; और जहाँ जलाशय हैं, वहाँ पर जलदेवता वरुण है ही। यह शताभिषक नक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच देवता साम्य सिद्ध हुआ।

६. **पुरुषार्थ साम्य** - शताभिषक नक्षत्र '**धर्म**' पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। गोस्वामीजी कहते हैं कि '**धर्म तें बिरति**' अर्थात् धर्म का फल वैराग्य है, और देखते हैं कि इस स्तुति के करने वाले परम वैराग्यवान् सनतकुमारगण हैं। इस स्तुति में ये लोग भगवान् के लक्षणों का वर्णन कर रहे हैं, और भगवान् का एक नाम धर्म भी है, तो इस स्तुति में एक प्रकार से, '**धर्म**' के लक्षणों का ही वर्णन है। यह इस स्तुति एवं शताभिषक नक्षत्र के बीच पुरुषार्थ साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - २६

पुरजनकृत द्वितीय स्तुति (उत्तरकाण्ड) - पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र

सुनत सुधासम बचन राम के। गहे सबनि पद कृपाधाम के।।
जननि जनक गुर बंधु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे।।
तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी।।
असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ।।
हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी।।
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं।।
सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने।।
निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई।।

दो० - उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप।।४७।।

अर्थ सहित व्याख्या -

भगवान् की अमृत के समान यह वाणी सुनकर सब अयोध्यावासियों ने कृपानिधान भगवान् के चरण पकड़ लिये। **इसका तात्पर्य यह है कि सबने अपने हृदय में भगवान् के चरणों को धारण कर लिया फिर छोड़ा नहीं, उन्हीं पर आश्रित हो गये।** सबको यह भी समझ में आ गया कि भगवान् कृपानिधान हैं, आनन्दस्वरूप हैं और सारे जीवों को दुःख से निवृत्त करना भगवान् का ही काम है।

अयोध्यावासी कहते हैं कि **'जननी जनक गुर बंधु हमारे'** - हे कृपानिधान भगवन्! आप ही हमारे माता, पिता, गुरु और

भाई हैं और प्राणों से भी प्रिय हैं। इसको वेदांत के अनुसार अपने भीतर भी देखो, कि हमें अपना साक्षी आत्मा ही सबसे अधिक प्रिय है। इसलिये ये लोग कहते हैं कि हे शरणागतों के हित करने वाले श्रीरामजी! आप ही हमारे शरीर, धन, घर-द्वार हैं और सब प्रकार से हमारा हित करने वाले हैं। लगता है कि अयोध्यावासियों को यह बात समझ में आ गयी कि जब तक हम परमात्मा के आश्रित होकर न रहें तब तक शरीर, धन, परिवार आदि सब दुःखदायी हैं, लेकिन जहाँ परमात्मभाव में जीवन जिएँ, तो ये ही दुःखदायी वस्तुएँ भी सुखदायी बन जायें। माने व्यावहारिक जीवन में जो प्रतिकूल स्थितियाँ थीं, वे सब अनुकूल हो गयीं।

'असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ' - हे भगवन्! आपने जैसी शिक्षा दी है वैसी तो कोई भी नहीं दे सकता। माता-पिता अपने पुत्र पर बहुत प्रेम रखते हैं लेकिन ऐसी शिक्षा (धर्म, आध्यात्म की शिक्षा) वे भी नहीं दे सकते क्योंकि उनके स्वार्थ में इससे बाधा पड़ती है। संसार में सच्चा उपकार करने वाले दो ही हैं जो कि बिना स्वार्थ के सही शिक्षा देने वाले हैं; हे भगवान्! आप काम, क्रोधादि असुरों का विनाश करने वाले हैं, सर्वसमर्थ हैं इसलिये ऐसा उपदेश देने वाले एक तो आप हैं और एक आपके सेवक हैं। यहाँ सेवक से तात्पर्य उससे है जो कि परमात्मचिंतन अथवा भक्ति करते-करते परमात्मभाव को प्राप्त हो गया है; वह भी परमात्मस्वरूप ही है इसलिये वह भी आपके जैसा उपदेश दे सकता है। बाकी और सारे संसार में तो स्वार्थभरी मित्रता है; ये लोग लौकिक बातें बतायेंगे लेकिन स्वप्न में भी परमार्थ की बातें करने वाले नहीं हैं।

'सब कें बचन प्रेम रस साने' - शङ्करजी पार्वतीजी को

कथा सुनाते हुए कह रहे हैं कि हे पार्वती! अयोध्यावासियों ने भगवान् से इस प्रकार बड़े प्रेम भरी और कृतज्ञता भरी बात, बड़ी विनम्रता पूर्वक बोली। भगवान् इन लोगों की बात को सुनकर हृदय में बड़े हर्षित हुए। और भगवान् ने जब इन लोगों को जाने के लिये सङ्केत कर दिया, तो ये सब आपस में बातें करते हुए अपने घरों को वापिस जा रहे हैं, तो भगवान् के पीठ पीछे भी आपस में कहते हैं कि भगवान् ने कैसी सुन्दर शिक्षा दी, हम तो अब इसी प्रकार से करेंगे जैसा भगवान् ने बताया।

इस प्रकार तुलसीदासजी यह भी बता रहे हैं कि उपदेश देने की विधि क्या है और उपदेश ग्रहण करने की विधि क्या है? जब उपदेश सुनें, तो उसके तुरंत बाद में लौकिक बातें न करने लगें वरना उपदेश हृदय में टिकने वाला नहीं है। सुनने के बाद भी उसी पर विचार करें, तब वह उपदेश जीवन में काम आता है।

गुरुदेव ने भी इस प्रकार की व्यवस्था की - आध्यात्मिक शिविर लगे; उसमें गुरुदेव लोगों को प्रवचन देते थे और प्रवचन के बाद आज्ञा थी कि शिविरार्थी ग्रुप बना कर आपस में विवेचन करें कि हमने क्या सुना है? इस प्रकार से उपदेश जीवन में लाभकारी होता है।

इसीलिये ये अयोध्यावासी भगवान् का उपदेश सुनकर, बाद में उसी पर विचार करते हुए, भगवान् के वचनों की प्रशंसा करते हुए मार्ग में चले जा रहे हैं।

शङ्करजी कहते हैं कि हे उमा! जहाँ स्वयं सच्चिदानन्दघन परमात्मा अवतार लेकर श्रीरामजी के रूप में राजा बने हुए हैं,

उस अयोध्या में वास करने वाले सब पुरुष और स्त्रियाँ **'कृतारथ रूप'** तो होंगे ही।

आप देखें कि कृतार्थ कौन होता है? शास्त्रों में बार-बार बताया गया है कि जो आत्मज्ञान, परमात्मज्ञान में स्थित है, पराभक्ति प्राप्त है - वही कृतार्थ है, कृत-कृत्य है। माने यह कृतकृत्यता का भाव तभी आता है जब परमार्थ सिद्ध हो। ये अयोध्यावासी पहले से ही (पूर्वजन्मों के) परमार्थसिद्ध ऋषि-मुनि हैं; तब ही तो इन्हें भगवान् के राज्य में वास करने का महान् सौभाग्य मिला है। फिर भी भगवान् उन्हें उपदेश देते हैं - **यह बात अन्य सब आगे के राजा लोगों के लिये मार्गदर्शन है कि आगे जो राजा लोग होंगे, उनका ये काम है कि प्रजा के ऊपर शासन तो करें ही; साथ ही प्रजा को धर्म की शिक्षा देने की भी व्यवस्था करें।** और अपने शास्त्रों में यह भी व्यवस्था है कि उपदेशक भी ज्ञानी है और श्रोता भी ज्ञानी है, तब भी अध्यात्मविद्या का उपदेश दिया जाता है और सुना जाता है।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में छब्बीसवाँ नक्षत्र 'पूर्वा भाद्रपदा' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह छब्बीसवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम पूर्वा भाद्रपदा है। भद्र = कल्याण या कृतार्थता, और जिसे **पूर्व** में ही यह **भद्रपद** प्राप्त हो चुका हो, जैसा कि स्तुति में कहा ही है कि 'उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप'; ऐसे अयोध्या वासियों द्वारा की गयी यह स्तुति

है। इसलिये इस स्तुतिरूपी नक्षत्र का **'पूर्वा भाद्रपदा'** नाम सार्थक है।

३. आकार-रूप साम्य – 'द्वंद्वद्वयेनोभयोः खट्वा' पूर्वा भाद्रपदा और उत्तरा भाद्रपदा दोनों मिलकर चारपाई के आकार के हैं। इस स्तुतिरूपी नक्षत्र में भगवान् रामजी और भगवान् के सेवक, चारपाई के दो पायेरूप हैं।

४. तारे संख्या साम्य – इस नक्षत्र में दो तारे हैं, इसी प्रकारसे इस स्तुति में भी भगवान् असुरारि और भगवान् के सेवक के रूप में दो तारे हैं। यह तारे संख्या साम्य हो गया।

५. देवता साम्य – इस नक्षंत्र का देवता 'अजैकपाद' है। ये एकादश रुद्रों में से हैं, अर्थात् **शिवजी** के ही स्वरूप हैं। देखते हैं कि श्रीरामचरितमानस में इस स्तुति वाले प्रसंग में भी **शिवजी** ही वक्ता हैं जो पार्वतीजी को कथा सुना रहे हैं; इस प्रकार से यह पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच देवता की दृष्टि से साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य – पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र **'अर्थ'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है, और अर्थ की प्राप्ति **उद्यम** से होती है। इस स्तुति के करने वाले अयोध्यावासी हैं, इन्होंने इस अयोध्या नगरी में जन्म लेकर भगवान् का सान्निध्य पाया है, यह बात स्वयं में प्रमाण है कि इन लागों ने अत्यधिक पुण्य किये हैं, पूर्ण **सात्विक उद्यम** किया है, जिसके फलस्वरूप इन्हें समस्त भौतिक सम्पदा **(अर्थ)** तो प्राप्त है ही –

अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज।।

लेकिन उत्तम बात तो यह है कि साथ ही साथ, चित्त शुद्ध होकर ये लोग परमार्थ की ओर अग्रसर हुए हैं। इस प्रकार यह स्तुति अर्थ पुरुषार्थ के श्रेष्ठरूप (परमअर्थ) से सम्बन्धित है। यह इस स्तुति एवं पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र में पुरुषार्थ की दृष्टि से साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - २७

वसिष्ठमुनिकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड) - उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र

एक बार बसिष्ट मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए।।
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा।।
राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु बिनती कछु मोरी।।
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा।।
महिमा अमिति बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना।।
उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा।।
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही।।
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहिं रघुकुल भूषन भूपा।।

दो० - तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन।।४८।।

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा।।
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन।।
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।।
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर।।
छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ।।
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।।
सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित।।
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई।।

दो० - नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु।। ४६।।

अर्थ सहित व्याख्या -

इस प्रकार बहुत दिन से भगवान् के राम-राज्य की व्यवस्था चल रही है; वर्ष-वर्ष बीतते चले जा रहे हैं। ऐसा समझ लो कि भगवान् की, राम-राज्य की स्थापना की लीला भी समाप्त प्रायः पर आ रही है। अब भगवान् अपनी लीला संवरण करके अपने साकेत-धाम को जाने का विचार बनाने वाले हैं। उस समय एक बार की घटना है कि मुनि वसिष्ठजी भी **'सुखधाम'** भगवान् श्रीरामजी से मिलने के लिये उनके पास आये।

भगवान् सुखधाम हैं, माने आनन्दस्वरूप एकमात्र परमात्मा ही है यदि और कहीं आनन्द लगता भी है, तो वह सुख की भ्रान्ति है। और जहाँ आनन्द है, वहीं स्वभावतः प्रेम भी होता है। यही सत्य भी है कि आनन्दस्वरूप परमात्मा अपने हृदय में बैठा हुआ है और उसी में सबसे अधिक प्रेम भी है। लेकिन अज्ञानी जीव को यह पता नहीं होता और भ्रान्तिवश, उस प्रेम का प्रक्षेपण वह शरीर में करता है, वहीं सुख भी समझता है। इस भ्रान्ति का निवारण यह है कि अपना स्वरूप परमात्मा है, उसे पहचानो और उसमें जो प्रीति पहले से विद्यमान है, उसे ही उद्घाटित करो।

वसिष्ठजी भगवान् को सुखधाम कह रहे हैं इसके पीछे यह कारण है कि जब भगवान् ने अवतार लीला प्रारम्भ की, शिशु रूप में थे, तो वसिष्ठजी ने भगवान् का नामकरण यह समझ कर ही किया था कि **'जो सुखधाम राम अस नामा'**,

अपने इन वचनों को वसिष्ठजी आज भी भूले नहीं। हालाँकि भगवान् राम वसिष्ठजी को गुरु मानकर उनके साथ में शिष्यता का व्यवहार करते हैं लेकिन वसिष्ठजी को इससे सङ्कोच होता है क्योंकि वे भगवान् राम को शिष्यरूप में नहीं देखते; वे भगवान् को सदा से ही **'सुखधाम'** परब्रह्म परमात्मा के रूप में देखते रहे हैं। लेकिन भगवान् की लीला हो रही है, तो उस लीला में सहयोग करते हुए ऊपर से किसी प्रकार से भगवान् के द्वारा की हुई पूजा इत्यादि को भी स्वीकार करते हैं। अब वसिष्ठजी यहाँ बता रहे हैं कि उन्होंने ये सब किस बाध्यता के कारण स्वीकार किया।

'अति आदर रघुनायक कीन्हा' - जब वसिष्ठजी भगवान् के पास पहुँचे तो भगवान् ने उनका गुरु के रूप बहुत आदर किया और उनके चरण धोकर चरणोदक अपने सिर पर डाला।

लगता है वसिष्ठजी को आज जो बातें करनी हैं वे अकेले में करना चाहते हैं। इसीलिये ऐसे समय आये हैं जब भगवान् अकेले हैं, उनके साथ सीताजी अथवा भाई लोग भी नहीं हैं।

'राम सुनहु मुनि कह कर जोरी' - वसिष्ठजी आज भगवान् राम के सामने हाथ जोड़ कर कहते हैं कि हे राम! आप कृपानिधान हैं, कृपया आप सुनिये। आप परब्रह्म परमात्मा होकर भी बिल्कुल मनुष्य की तरह व्यवहार करते हो, तो इन सुन्दर लीलाओं को देख-देखकर हमारे मन में तो मोह उत्पन्न हो जाता है कि आप परब्रह्म परमात्मा हो ही नहीं, निरे मनुष्य हो।

तुलसीदासजी ने भी श्रीरामचरितमानस में अन्यत्र कहा है कि भगवान् की लीलाएँ बड़ी अद्भुत हैं उन्हें देखकर बहुत

ज्ञानी व्यक्ति ही मोह से बच पाते हैं और अज्ञानी व्यक्तियों का मोह तो और बढ़ जायेगा। यहाँ पर वसिष्ठजी कहते हैं कि हमें मोह तो होता है लेकिन जब हम याद करते हैं, तो लगता है कि आप सच्चिदानंद स्वरूप परमात्मा ही हो। आपकी ही महिमा वेदों ने गायी है। भगवान् की महिमा में ही यह बात कही गयी है कि भगवान् की माया ने ही सारे जगत् की रचना की है। तमाम जीव भी परमात्मा के ही रूप हैं लेकिन जीव परमात्मा को भूल गये। **जीव भी कोई अलग वस्तु नहीं है वह भी परमात्मा की लीला है, वही परमात्मा ज्ञानी होकर परब्रह्म परमात्मा है और वही दूसरी ओर से अज्ञानी होकर जीव भी है। ये सब भगवान् की महिमा है।**

वसिष्ठजी कहते हैं कि हे भगवन्! आपकी महिमा अपार है जिसे वेद भी पूरी तरह नहीं जान पाये, तो वे निषेधात्मक रूप में नेति-नेति कह कर महिमा का बखान करते हैं। इसलिये मैं आपकी महिमा का वर्णन किस प्रकार करूँ? अब वसिष्ठजी आगे कहते हैं कि **'उपरोहित्य कर्म अति मंदा'** - मैंने इतने दिनों आपके वंश में पुरोहिती का काम किया जबकि ये काम बड़ा खराब है। वेद-पुराण और स्मृतियाँ इस काम की बड़ी निन्दा करती हैं।[1] वसिष्ठजी कहते हैं - ब्रह्माजी ने मुझसे कहा कि तुम जाकर रघुवंश के पुरोहित बनो, तो मैंने उनसे मना किया कि हम तो पुरोहिती का काम नहीं करेंगे। तब ब्रह्माजी ने कहा कि **'लाभ आगें सुत तोही'** - हे पुत्र! तुम्हें अभी यह काम खराब लग रहा है लेकिन चाहे जैसे भी कर्म हों; वे सब

---

१. शास्त्रों में कहा गया है कि पुरोहित अपने यजमान के लिये यज्ञ इत्यादि करके बदले में पैसा ले लेते हैं, तो यजमान के पाप उसके ऊपर चढ़ जाते हैं। अब वह उस पाप का प्रक्षालन करे, एक लाख गायत्री मंत्र जपे तब उसका उद्धार हो; नहीं तो अगले जन्म में उसे कुत्ता बनना पड़ेगा।

कर्म अच्छे हो जाते हैं जिन कर्मों से परमात्मा की प्राप्ति होती है। तुमको यह कार्य करने से परमात्मा की प्राप्ति होगी इसलिये तुम जाओ और इस कार्य को स्वीकार करो। कुछ काल बाद रघुवंश में ही वही परमात्मा नररूप धारण करके अवतार लेगा और वह रघुवंश का भूषण होगा और अयोध्या का राजा बनेगा। तो उस समय आपको भगवान् के दर्शन प्राप्त होंगे और हर मनुष्य का अंतिम लक्ष्य परमात्मा प्राप्तिं ही है। इस प्रकार से तुमको उनके दर्शन प्राप्त हो जायेंगे, तो हम तुम्हारे लाभ की ही बात कह रहे हैं।

इसमें रहस्य की बात यह है कि कर्म वही निन्दनीय है और निकृष्ट है, जो परमात्मा से हमको दूर करे और जो कर्म हमें परमात्मा के निकट ले जाये वह कोई भी कर्म हो; खराब कर्म नहीं है। माने कर्म स्वयं अपने आप में न भला है न बुरा है। इस प्रकार ब्रह्माजी ने जबरदस्ती करके वसिष्ठजी को पुरोहिती कार्य में लगा दिया क्योंकि ब्रह्माजी जानते थे कि किसका उद्धार किस कार्य में है। माने गुरु ही जानते हैं कि शिष्य का उद्धार किस कार्य में है।

वसिष्ठजी कहते हैं कि तब मैंने अपने मन में विचारा कि योग, यज्ञ, व्रत और दान आदि नाना प्रकार की साधनाएँ, जो की जाती हैं; उन समस्त साधनाओं का अन्तिम उद्देश्य तो परमात्मा प्राप्ति ही है। वही परमात्मा हमें इसी पुरोहिती कार्य से प्राप्त होगा, तो इसके समान हमारा कर्त्तव्य कर्म कोई दूसरा नहीं हो सकता; इसलिये हमने पुरोहिती स्वीकार कर ली। उसके बाद आपने इस वंश में अवतार लिया और आपके दर्शन करके मैं कृत-कृत्य हो गया।

अब वसिष्ठजी कहते हैं कि जप (अनुष्ठान आदि), इन्द्रिय निग्रह-मनोनिग्रह आदि तपस्याएँ, ब्रह्मचर्य-अहिंसा आदि नियम और ध्यानयोग इत्यादि, अपने कर्त्तव्यकर्मों का पालन, श्रुतियों में बताये गये अन्य पुण्य कार्य तथा भगवान् का ज्ञान, दया, दम, तीर्थयात्रा आदि और जहाँ तक वेद और संत लोगों ने धर्म बताये हैं - उन सबके करने का तथा आगम-निगम आदि शास्त्रों के पढ़ने (गुरु मुख से सुनने) का सबसे सुन्दर एक ही फल है, और वह फल है परमात्मा की प्राप्ति होना, आपके चरणों में निरन्तर प्रेम बना रहना।

सबसे सुन्दर फल कह कर यह लगा कि इन सब साधनों - जप, तप इत्यादि के लौकिक फल भी हो सकते हैं। जैसे कि व्यावहारिक जीवन में व्यक्ति की विपत्तियाँ, रोग-शोकादि दूर हों, शांति प्राप्त हो; लेकिन इन सब फलों में सबसे अंतिम फल परमात्मा का ज्ञान और परमात्मा में प्रीति है। मन्दिर में जाना भगवान् से लौकिक कामना रखना और उसकी पूर्ति हो जाना कोई सुन्दर फल थोड़े ना है? परन्तु इसे प्राप्त करके भी समाज में कई बार लोग कहते हैं कि हम पर भगवान् की बड़ी कृपा है, लेकिन यह तो साधारण कृपा है और यह सब सदा रहने वाली नहीं है, तो फिर ये उत्तम फल कहाँ है? उत्तम फल तो परमात्मा की प्राप्ति उसी की प्रीति है; जो प्राप्त हो जाये तो सदा बनी रहे। यह परमानन्द स्वरूप है। इसीलिये वसिष्ठजी इसे **'सब साधन कर यह फल सुंदर'** कहते हैं।

'छूटइ मल कि मलहि के धोएँ' - यदि किसी व्यक्ति के पैरों में, बरसात में चलने से कीचड़ लग जाये, तो अब

कीचड़ ही लेकर उसे साफ़ करो, तो कीचड़ से कीचड़ कहाँ साफ़ हुई जाती है?

हे श्रीरामजी! इसी प्रकार **'अभिअंतर मल'** - अपने अंदर का मल धोने के लिये भगवान् का प्रेम चाहिए। यदि अपने हृदय में भगवान् की भक्ति रूपी जल नहीं तो अपने मन की मलिनता कभी जायेगी ही नहीं।

माने इस मलिनता को दूर करने के दूसरे दोनों उपायों (कर्म और ज्ञान) का यहाँ खण्डन हो गया। **कर्म के द्वारा ही कर्म के बन्धन नहीं छूट सकते क्योंकि कर्म करने से ही तो वासनाएँ बनीं। माने सकामकर्म तो व्यक्ति को बन्धन में बाँधने वाले हैं इसलिये सकामकर्म करने से, सकामकर्म करने से ही उत्पन्न हुआ मल (बन्धन) दूर नहीं हो सकता।** इसलिये कर्म तो करो लेकिन निष्काम भाव से करो और भगवान् की भक्ति प्राप्त करने का प्रयास करो। वसिष्ठजी कहते हैं कि मैंने सब शास्त्रों को देखकर और अनुभव से भी, यह समझ लिया कि केवल भक्ति ही हो; तभी चित्त शुद्ध हो, निर्मलता आवे।

अपने अंदर के मल को छुड़ाने की आवश्यकता इसलिये है कि मल (काम, क्रोध लोभ मोह आदि) जब तक रहेगा तब तक दुःख रहेगा, अशांति रहेगी। बुद्धि मलिन होगी, तो अपने दुर्गुण अच्छे लगेंगे और दूसरे के गुणों में भी दुर्गुण दिखायी देंगे। ये सब मानसिक समस्याएँ हैं; भगवान् की भक्ति आवे, तो ये सब समस्याएँ हल हों।

'घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ' - जैसे कि जल को मथने से कोई कभी घी नहीं पा सकता - क्योंकि जल में घी है ही नहीं। इसी प्रकार ज्ञान भी एक प्रकार का हृदय

मंथन है जिसमें से आत्मज्ञान, परमात्मज्ञान को निकालते हैं। माने हृदय (हृदय तो वह है जहाँ आत्मा है ही) में जाकर विचार करो, तो परमात्मा प्रकट हो, लेकिन हृदय के बदले मन (जहाँ पर संकल्प विकल्प हैं) का मंथन करना चाहो, तो उसमें से परमात्मा कैसे प्रकट हो सकता है? इसलिये माया (प्रपञ्च) का मंथन मत करो, जो मायापति परमात्मा है उसका स्मरण करो; बिना उसका स्मरण किये परमात्मा की प्राप्ति होने वाली नहीं है।

हृदय समस्त सात्विक गुणों का भण्डार है और प्रेम का वास स्थल है। हृदय में परमात्मा का ज्ञान भी होगा परमात्मा की भक्ति भी होगी। इसलिये बिना प्रेम के जल से धोए अपने भीतर का मल दूर नहीं होता।

महाभारत में एक श्लोक आता है कि पाण्डवों को वन में घूमते हुए एक ऋषि मिले, तो इन्होंने उनसे कहा कि भगवन् जब से हमें वनवास हो गया, तो गङ्गाजी के दर्शन, गङ्गाजी में स्नान ही मुश्किल हो गया है। तो ऋषि ने कहा कि आप अपने भीतर देखो, गङ्गाजी अपने भीतर भी तो हैं —

आत्मानदी संयम पुण्यतीर्थः सत्योदकः शीलतटः दयोर्मि।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्धति च अन्तरात्मा।।

पानी (गङ्गाजल) से चाहो कि अपना अन्तःकरण शुद्ध हो ज़ायेगा, तो यह कैसे सम्भव है? अन्तःकरण शुद्ध करने के लिये तो भगवान् का प्रेम चाहिए, भक्ति चाहिए। ऊपर-ऊपर से कितनी सफ़ाई कर लो लेकिन भीतर मन में कितना कूड़ा-कचरा (मल) भरा हुआ है - वह दुःख देता रहता है। उसके लिये तो प्रेम के जल में स्नान की जरूरत है।

'सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित' - जिसको भगवान् के चरणों में प्रीति हो गयी, वही सर्वज्ञ है, वही तत्त्व का ज्ञाता है, वही विद्वान है; आत्मज्ञानी है और वही सर्वगुण सम्पन्न है और उसी का विज्ञान अखण्डित है। सबसे बड़ा ज्ञानी कौन? जिसका कि चित्त परमात्मा में ही सदा लगा रहे। इसी का नाम भक्ति है, वही व्यक्ति दक्ष (कुशल) है, उसी में परिपूर्णता है; जो व्यक्ति अपने जीवन को सब तरफ़ से सँभाल कर, संतुलन बना कर अपने अन्तर्तम में प्रवेश करके, आत्मभाव में स्थित हो जाये। उससे ज्यादा **'दक्ष'** कोई नहीं है।

'सकल लच्छन जुत सोई' - जो व्यक्ति परमात्मा की भक्ति प्राप्त कर ले, तो उसमें ही समस्त सद्‌गुण माने जायेंगे। जिसके हृदय में भगवान् के चरणों में प्रीति हो गयी, उसकी सब प्रकार से सफ़लता है। माने **जीवन का अंतिम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति और चित्त का उसी में लगे रहना है। चित्त को निरन्तर लगाये रखने का तात्पर्य यह नहीं कि कुछ काम न करो वरन् यह है कि चित्त निरन्तर परमात्मा में लगा रहे और संसार के काम होते रहें; और सुन्दर ढंग से होते रहें।**

यदि कोई व्यक्ति इतना कुशल है कि उसने आत्मस्वरूप प्राप्त कर लिया, भक्ति भी प्राप्त कर ली, तो व्यावहारिक कार्यों में तो उसकी कुशलता का कुछ मत पूछो; वो तो कुशल बने ही बनाये हैं।

'नाथ एक बर मागउँ' - अंत में वसिष्ठजी भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे नाथ श्रीरामजी! मैं आपसे एक वरदान माँगता हूँ, आप कृपा करके दीजिये। हे प्रभु! आपके चरणकमलों में मेरा प्रेम सदा बना रहे, ये कभी घटे नहीं। अपना चित्त

सदा परमात्मा में स्थिर रहे। यही अंतिम उपलब्धि है उसी की इच्छा वसिष्ठजी जैसे ज्ञानी; भगवान् के गुरु भी करते हैं।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में सत्ताईसवाँ नक्षत्र 'उत्तरा भाद्रपदा' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह सत्ताईसवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम उत्तरा भाद्रपदा है, भद्र = कल्याण, कृतार्थ। जैसा कि पूर्वा भाद्रपदा के साम्य में कहा गया कि अयोध्यावासी पहले ही **भद्रपद** प्राप्त कर चुके हैं - 'कृतारथ रूप' हैं, तो इस स्तुति के कर्ता गुरु वसिष्ठजी भी अयोध्यावासी होने के कारण 'कृतारथरूप तो हैं ही - साथ में वे सब अयोध्यावासियों से **उत्तर = श्रेष्ठ** भी हैं, इसलिये इस स्तुतिरूपी नक्षत्र का **उत्तरा भाद्रपदा** नाम सार्थक है। इस प्रकार से इस स्तुति एवं उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र में नाम साम्य हो गया।

३. आकार-रूप साम्य - पूर्वा और उत्तरा भाद्रपदा दोनों मिलकर चारपाई के आकार के हैं, और पूर्वा के 'भगवान्' और 'भगवान् के सेवक' रूपी दो पायों में इस स्तुति के 'प्रभु पद कमल' और 'प्रेम भगति जल' रूपी दो और पाये मिलाकर चारपाई का आकार पूरा हो गया। यह इस स्तुतिनक्षत्र और उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र में आकार-रूप साम्य हो गया।

४. तारे संख्या साम्य - इस नक्षत्र में दो तारे हैं, और इस स्तुति में भी 'प्रभु पद कमल' तथा 'प्रेम भगति जल' रूपी दो तारे

हैं। इस प्रकार यह इस स्तुति-नक्षत्र का उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र से तारे संख्या साम्य हो गया।

५. देवता साम्य – इस नक्षत्र के देवता 'अहिर्बध्न्य' हैं, जो एकादश रुद्रों में से एक हैं, अर्थात् **शिवजी** के ही स्वरूप हैं। देखते हैं कि श्रीरामचरितमानस में इस स्तुति वाले प्रसंग में भी **शिवजी** ही वक्ता हैं, जो पार्वतीजी को कथा सुना रहे हैं; इस प्रकार से यह उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच देवता की दृष्टि से साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य – उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र **'काम'** नक्षत्र है। शास्त्रों में कहा गया है कि मैत्री (संपर्क) क्रिया का फल 'काम' पुरुषार्थ है। यहाँ पर देखते हैं कि वसिष्ठजी भगवान् के संपर्क में रहे हैं, तो भगवान् के प्रति उनकी प्रीति बढ़ती चली गयी है। इनके मन में यह कामना जगी है कि भगवान् के चरणों में प्रेम हमारे मन में कभी भी कम न होने पाये। इस स्तुति में वसिष्ठजी ने प्रभु के सम्मुख अपनी यह **कामना** प्रकट की है। इसलिये यह स्तुतिरूपी नक्षत्र 'काम' पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। यह इस स्तुति एवं उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र के बीच पुरुषार्थ की दृष्टि से साम्य हो गया।

॥जय श्रीराम॥

स्तुति संख्या - २८

नारदकृत स्तुति (उत्तरकाण्ड) - रेवती नक्षत्र

दो० - तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल कीरति सदा नबीन।। ५०।।

मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन।।
नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि।।
जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन।।
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक।।
भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित।।
रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर।।
सुजस पुरान बिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम।।
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन।।
कलि मल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन।।

दो० - प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम।। ५१।।

अर्थ सहित व्याख्या -

अयोध्या नगरी के बाहर शीतल अमराई में भगवान् बैठे हुए हैं और हनुमान्‌जी तथा भरतजी आदि भाई उनकी सेवा में लगे हुए हैं, इस प्रकार भगवान् की थकान मिट रही है। उसी समय वीणा बजाते हुए नारदजी वहाँ पर आये, जहाँ भगवान्

बैठे हुए हैं और नारदजी भगवान् की स्तुति गाने लगे। एक प्रकार से भगवान् की लीला में यह अंतिम स्तुति है।

नारदजी भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे कमल के समान नेत्रों वाले भगवान्! माने आप सब पर कृपादृष्टि डालकर सबका शोक छुड़ाने वाले हैं, हमारे ऊपर भी आप अपनी सुन्दर कृपादृष्टि डालिये। **'सोच बिमोचन'** कहने से लग रहा है कि नारदजी के मन में अभी भी खेद है कि भगवान् को हमारे श्राप के कारण इतने कष्ट सहने पड़े हैं। इसलिये नारदजी कहते हैं कि हे भगवान् अब आप कृपा करो कि हमारे मन का यह शोक तो मिटे। हे भगवान्! नीले कमल के समान सुन्दर आपका श्याम वर्ण है। और आप **'काम अरि'** माने शङ्करजी के हृदयरूपी कमल के मकरन्द का पान करने वाले भ्रमर के समान हो। माने आप शङ्करजी के हृदय में सदा वास करते हो।

इस प्रकार भी कह सकते हैं कि हे भगवान्! आपके भक्तों के हृदय में भी कामना नहीं रह जाती है और उनके हृदयरूपी कमल के प्रेमरस रूपी मकरन्द का पान करने वाले मधुप के समान आप हैं।

'जातुधान बरूथ बल भंजन' - समस्त निशाचरी सेना का आपने संहार कर दिया। आप मुनि और सज्जन लोगों के हृदय को आनन्द देने वाले हैं और पापों का नाश करने वाले हैं। ब्राह्मणरूपी धान की खेती को विकसित करने के लिये आप नवीन **'बृंद बलाहक'** - मेघों के समूह हैं। माने भगवान् विप्रों की रक्षा करने वाले हैं। आप अनाथ लोगों को शरण देने वाले हैं और दीन भक्तों (निरहङ्कारी भक्तों) को आप स्वीकार करते हैं क्योंकि वे आपको प्रिय हैं।

'भुज बल बिपुल' - आपकी भुजाओं में बहुत शक्ति है जिसके द्वारा आपने पृथ्वी का भार उतार दिया। आपने खर-दूषण को मार गिराया, विराध को जमीन खोद कर उसमें गाड़ दिया - इस प्रकार इन सब निशाचरों का विनाश करने में आप बड़े कुशल हैं। आप रावण (जो दूसरों को रुलाता है) के शत्रु हैं, सुखरूप हैं और राजाधिराज हैं। आप महाराज दशरथ के कुलरूपी कुमुदिनी को प्रफुल्लित करने के लिये चन्द्रमा के समान हैं। माने आप सारे दशरथ कुल को आनन्दित करने वाले हैं। आपका यश पुराणों में, वेदों में और आगम शास्त्रों में वर्णित है। देवता, मुनि और संत समुदाय उस यश को अपनी-अपनी रुचि और स्वभाव के अनुसार विभिन्न प्रकार से गाते हैं।

'कारुनीक ब्यलीक मद खंडन' - आप करुणानिधान हैं और जो **'ब्यलीक'** माने अभिमान में दूसरों को कष्ट देने वाले लोग हैं, उनका आप विनाश करते हैं। हे कोसलामंडन! आप सब प्रकार से कुशल हैं। माने सर्वसमर्थ हैं, लौकिक सुख भी दे सकते हैं और पारमार्थिक सुख भी दे सकते हैं। अविद्या, राग-द्वेष से लेकर काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि जितने भी विकार हैं; ये सब **'कलिमल'** हैं; आपका नाम स्मरण इन सबसे छुटकारा करा देने वाला है और **'मेरेपन'** के भाव को मारने वाला है।

देखते हैं कि व्यक्ति की ममता वृद्धावस्था में और अधिक परिपुष्ट होती जाती है। शास्त्र कहते हैं कि कौन किसका पुत्र, किसका भाई-बन्धु? ये सबके सब तभी तक हैं; जब तक भगवान् का भजन नहीं, ध्यान साधना नहीं, नाम जप नहीं। जब शरीर ही अपना नहीं तो शरीर से सम्बन्ध रखने वाली दुनियाँ क्या

अपनी हुई? पंचदशी में आता है कि जो व्यक्ति अपने आत्मस्वरूप के अतिरिक्त अन्य कहीं प्रीति रखता है उसका विनाश होता है, वह नर्क जाता है, दुखी होता है। जब तक ममता रहेगी तब तक जीवन में दुःख रहेगा। **लेकिन ममता को व्यक्ति वस्तुओं में न जोड़ें - यह तो मन में रहती है। ज्ञान के द्वारा, विचार के द्वारा ममता निवृत्त होगी तब कल्याण है।**

'तुलसिदास प्रभु' - भगवान् श्रीरामजी का एक नाम तुलसीदास प्रभु भी है; जो लोग भगवान् की शरण में आते हैं भगवान् उनकी रक्षा करते हैं। यह तो नारदजी ने प्रार्थना की है; यह सुन्दर प्रार्थना है, हम सबको भी इसी प्रकार की प्रार्थना भगवान् से करनी चाहिए। नारदजी ने इस प्रकार बड़े प्रेम के साथ भगवान् की स्तुति की, और भगवान् के विविध गुणों का वर्णन किया और भगवान् के सुन्दर स्वरूप को हृदय में धारण किया और जहाँ ब्रह्मलोक है, वहाँ चले गये।

नारदजी को लगा कि अब भगवान् की लीला समाप्त होगी, तो दोबारा - कहो, इस प्रकार का रूप न देखने को मिले; इसलिये भगवान् के सुन्दर स्वरूप को हृदय में धारण कर लिया। यहाँ पर जो कुछ भी वर्णन तुलसीदासजी कर रहे हैं वह साङ्केतिक भाषा में है, भगवान् के लीला संवरण करने की कथा स्पष्ट रूप में नहीं कहते हैं। यद्यपि पार्वतीजी ने बालकाण्ड में जो नौ प्रश्न किये हैं उनमें अन्तिम प्रश्न यही था कि भगवन् यह भी बताइये कि भगवान् अपनी लीला समाप्त करके वैकुण्ठ धाम को किस प्रकार से चले गये? उस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से बताना शङ्करजी को अच्छा नहीं लगा कि ये क्या कोई अच्छी बात है कि भगवान् परमधाम जा रहे

हैं, उसकी चर्चा करो? भगवान् तो नित्य विद्यमान हैं। वे अयोध्या में भी नित्य विद्यमान हैं और भावात्मक धाम भी, उनका नित्यधाम है। भगवान् एकदेशीय नहीं हैं, वे तो सर्वव्यापी हैं।

स्तुति का नक्षत्र से साम्य -

१. अनुक्रम साम्य - आकाश स्थित नक्षत्र-मण्डल में अट्ठाईसवाँ नक्षत्र 'रेवती' है, और श्रीरामचरितमानस में स्तुति-मण्डल की यह अट्ठाईसवीं स्तुति है। इसप्रकार इस स्तुति का रेवती नक्षत्र से अनुक्रम साम्य हो गया।

२. नाम साम्य - इस नक्षत्र का नाम रेवती है। 'रेवृ' धातु गतिवाचक है, इसलिये रेवती = गतिमति। देखते हैं कि यह स्तुति भगवान् श्रीरामजी के निजधामगमन के समय की है; इसलिये इस स्तुति-नक्षत्र का भी रेवती नाम सार्थक होता है।

३. आकार-रूप साम्य - रेवती नक्षत्र का आकार मृदंग के जैसा है, और इस स्तुति में मृदंगवादन की विशेष ध्वनि निदर्शक शब्द समूह - भंजन-गंजन, खंडित-पंडित, खंडन-मंडन विद्यमान हैं। इस प्रकारसे ये शब्द समूह इस स्तुति एवं रेवती नक्षत्र के बीच आकार-रूप साम्य सिद्ध करते हैं।

४. तारे संख्या साम्य - रेवती नक्षत्र में ३२ तारे हैं। देखते हैं कि इस स्तुति में भगवान् के ३२ गुणों के रूप में, उनके ३२ भूषणों का वर्णन है, जो क्रम से इस प्रकार हैं -

१.कल कीर्ति २.सदा नबीन कीर्ति ३.पंकज लोचन ४. सोचबिमोचन ५.नील तामरस स्याम ६.मधुप ७.हरि ८.जातुधान भंजन ९.मुनि रंजन १०.सज्जन रंजन ११. अघ गंजन १२.भूसुर......

बलाहक १३.असरन सरन १४.दीन जन गाहक १५.भुज बल.... खंडित १६.खर दूषन.....पंडित १७.रावनारि १८.सुखरूप १६.भूपबर २०.जय........सुधाकर २१.सुजस.....निगमागम २२.गावत सुर २३.गावत मुनि २४.गावत संत २५.कारुनीक २६.ब्यलीक मद खंडन २७.सब बिधि कुसल २८.कोसला मंडन २६.कलि मल मथन ३०.ममताहन ३१.पाहि प्रनत जन ३२.सोभासिंधु।

उपरोक्त ३२ गुण ही इस स्तुति-नक्षत्र के ३२ तारे हैं, और इस प्रकारसे इस स्तुति एवं रेवती नक्षत्र के बीच यह तारों की संख्या की दृष्टि से साम्य हो गया।

५. देवता साम्य - रेवती नक्षत्र का देवता पूषा = सूर्य है। देखते हैं कि इस स्तुति में भगवान् रामजी के नाम को 'ममताहन' कहा है, उधर मानस में ही अन्यत्र आता है कि 'ममता तरुन तमी अंधिआरी', तो इस ममतारूपी रात्रि का नाश करने वाला रामनाम रूपी 'पूषा' देवता इस स्तुति में भी विद्यमान है। यह रेवती नक्षत्र एवं इस स्तुति के बीच देवता की दृष्टि से साम्य हो गया।

६. पुरुषार्थ साम्य - रेवती नक्षत्र **'मोक्ष'** पुरुषार्थ से सम्बन्धित है। शास्त्रों के अनुसार दुःखों की सीमा का उल्लंघन करना ही **मोक्ष** कहलाता है। जैसे कि ईशावास्य उपनिषद् में ऋषि कहते हैं कि 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' अर्थात् आत्मैकत्व (आत्मस्वरूप में स्थिति) को अनुभव करने वाले पुरुष को मोह और शोक का क्या काम? क्योंकि शोक भी मोह का ही व्यक्तरूप तो है।

गीताजी में भी भगवान् कहते हैं कि परमात्माप्राप्तिरूप अवस्था में स्थित योगी, बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता। इधर इस स्तुति में भी देखते हैं कि भगवान् को 'कृपा

बिलोकनि सोच बिमोचन' माने कृपापूर्वक देखलेने मात्र से **शोक से छुड़ाने वाले**, कहा गया है। अर्थात् इस स्तुतिरूपी नक्षत्र का भी **मोक्ष** पुरुषार्थ से सम्बन्ध सिद्ध होता है। यह पुरुषार्थ की दृष्टि से इस अंतिम स्तुति एवं रेवती नक्षत्र में साम्य हो गया।

स्मरण करें कि मानस की पहली स्तुति (जय-जय सुरनायक-बालकाण्ड दोहा १८६) ब्रह्माजी ने की है, तो अंतिम स्तुति करने वाले नारदजी **'सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम।।'** *शोभा के समुद्र प्रभु को हृदय में धरकर ब्रह्माजी के लोक को चले गये।* अर्थात् अंतिम स्तुतिकर्त्ता (नारदजी), पहली स्तुति करने वाले (ब्रह्माजी) के घर गये, तो मानो चक्र बन गया। इस प्रकार श्रीरामचरितमानस में बालकाण्ड (दो० १८६) में ब्रह्मदेवकृत स्तुति से लेकर उत्तरकाण्ड में नारदजी द्वारा की हुई इस स्तुति तक, कुल २८ स्तुतियों के रूप में, यह अद्भुत-अलौकिक **स्तुतिनक्षत्रमण्डल** भी पूर्ण हो गया।

॥जय श्रीराम॥

'परम पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में सादर समर्पित'

हरिः ॐ।।श्री गुरुभ्यो नमः।।हरिः ॐ

वन में राम

(प० पू० स्वामी शंकरानन्दजी)

वह रही मंदाकिनी की धार निर्मल
परम पावन घाट के नीचे
मंद किंचित शब्द कल कल
आज तो कुछ भवन मंदिर
भंग करते हैं वहाँ की शांति को
रात के सुनसान तम में आज तो
दीप जलते हैं कहीं दो चार
किन्तु उस दिन जब कि दोनों भ्रात ही
पति-पदों के प्रेम रस पागी हुई
जनकनंदनि को लिये
सबसे प्रथम आये रहे।
चारों तरफ तब दीखता होगा
शांत नीरव
एक बस सुनसान
रात में दीपक नहीं दिन में न नर के चिन्ह
दीखते होंगे कदाचित मृग शश्य
खींचे हुये दो कान।
शोध किसी टीले को तट पर
तरु छाया, जल निकट
धूप शीत के सब सुपास से
अनुज भ्रात ने चुना कहीं पर
एक बहुत फिटफाट ठाँव-सा

जचा राम को सीता ने स्वीकार किया
इसी बात पर लखन बंधु ने
बसने का सब ठाट किया
एक रात तो तरु के नीचे किसी भाँति काटी होगी
और दूसरे दिन उठते ही
फल फूलों का कर प्रबंध
तिनके पत्ते काट बीन कर एक झोंपड़ी छाई होगी
अगर कहीं से कोल भील आ निकले होंगे
तो वे सुंदर अनुपम देव तुल्य प्रतिमायें लख लख
कितने मुग्ध हुए होंगे।
अपने कार्य सकल विस्मृत कर
पर्ण कुटी वह रुचि रुचि खूब सँवारी होगी
फिर लक्ष्मण ने कभी समय पा
अपने हेतु एक छोटी सी संकुचित झोंपड़ी छा ली होगी
लेकिन है संदेह कभी जो वह भी काम पड़ी होगी
क्योंकि दिवस भर काम काज में
यों ही बीत गये होंगे
संध्या होते वीर वृती वे वीरासन पर आये होंगे
सकल रात शर शायक से ही अपनी बात किये होंगे।

✿✿✿✿✿

श्रीभगवान्-नारद संवाद

(प० पू० स्वामी शंकरानन्दजी)

अहह! प्रिय नारद मेरे भक्त
समय है आओ अवसर बीच।
भोगता हूँ मैं यह परिणाम
कि जिसका कारण है वह रात
किया था दम्भ तुम्हारा चूर
लिया था विश्वमोहनी ब्याह
और मैं जाता था सुरधाम
मार्ग में तुमने पाकर क्रोध
दिया था मुझको यह वरदान।
नहीं करता हूँ अब मैं क्रोध
किया था जो मेरा कर्त्तव्य
मुझे हैं अति प्रिय मेरे भक्त
और है मुझको लीला प्रेम।
तुम्हारे हित हे नारद देव!
समर्पित है मेरी सब वस्तु
किन्तु यह माया का भ्रम एक
हरण कर लेता सब की बुद्धि
अतः मैं स्वयं जान कर नित्य
बचाता भक्तों को अन-हेतु
नहीं देखें हैं ऐसे लोग
सकें कर उससे कठिन विरोध
बड़े मुनि, ज्ञानी, पण्डित लोग
टिका जाते हैं अपने कान।
अरे भारी है माया व्यूह

संभाले उसका पहला द्वार
वीरवर सेनानी दृढ़ काम
सहायक हैं उसके भी अन्य
हजारों की संख्या समवेत।
नारि है उसका पहला अस्त्र
उसी से करता है संहार।
चराचर के प्राणी समुदाय
बने रह जाते हैं बस हीन
नहीं कुछ उसे ज्ञान की ढाल
क्षणों में कर देता है चूर
बचे हैं अब तक कुछ ही भक्त
जिन्हें कह सकता हूँ निर्मुक्त।

हृदय में भर आया सद्भाव
प्रेम सरिता उमड़ी आहूत
कमल दल चरण मनोहर कांत
गहे नारद ने भर आमोद

धन्य है तुमने प्रभु श्रीराम
किया वर्णन अपने मुख आज
जगत जीवन बंधन जड़ नारि।
सत्य है, व्यक्त मुझे भी आज
अपेक्षा हम मृत्यों के सुप्त
अधिक हैं, तुमको ही यह ज्ञात
कि जीवन का हो कैसा अर्थ
बने कैसे सार्थक यह गात।

✿✿✿✿✿

श्रीरामायणजीकी आरती

आरति श्रीरामायनजी की।
कीरति कलित ललित सिय पी की।।
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद।
बालमीक बिग्यान बिसारद।।
सुक सनकादि सेष अरु सारद।
बरनि पवनसुत कीरति नीकी।।१।।
गावत वेद पुरान अष्टदस।
छओ सास्त्र सब ग्रन्थन को रस।।
मुनि जन धन संतन को सरबस।
सार अंस संमत सबही की।।२।।
गावत संतत संभु भवानी।
अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी।।
ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी।
कागभुसुंडि गरुड के ही की।।३।।
कलिमल हरनि बिषय रस फीकी।
सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की।।
दलन रोग भव मूरि अमी की।
तात मात सब बिधि तुलसी की।।४।।

गोस्वामी तुलसीदासजी को भगवान् श्रीरामजी के दर्शन हो गये, तो वे सर्वज्ञ हो गये। यही कारण है कि तुलसीदासजी की काव्यप्रतिभा चमत्कृत करने वाली और पूर्णरूप से अलौकिक है। उन्हें काव्य के साथ-साथ अन्य सब कलाओं की भी सिद्धि प्राप्त हो गयी। इसीलिये उन्होंने मानस में स्तुतियों को नक्षत्रमण्डल का प्रतिरूप बनाने में ज्योतिष के अद्भुत ज्ञान का प्रदर्शन किया है। अलौकिक बात यह देखने में आती है कि इसमें विभिन्न भक्तों द्वारा की गयी, प्रभु श्रीरामजी की 28 स्तुतियों का, आकाश स्थित नक्षत्रमण्डल से - अनुक्रम, नाम, रूपाकार, अधिपति-देवता, तारों की संख्या और मानव जीवन के पुरुषार्थ से सम्बन्ध - इन सभी स्तरों पर अद्भुत साम्य है। 'नमामि भक्त वत्सलं' पुस्तक में इस साम्य को विस्तारपूर्वक दिखलाया गया है।

संतों का कहना है कि इन 28 स्तुतियों में समस्त उपनिषदों का सार निहित है। इस पुस्तक में ज्ञान और भक्ति से परिपूर्ण इन्हीं समस्त स्तुतियों की सुन्दर आध्यात्मिक व्याख्या, चिन्मय मिशन के महान् संत, वेदान्त मर्मज्ञ प0पू0 स्वामी शंकरानन्दजीकृत है।

CHINMAYA MISSION

NAMAMI BHAKTA VATSALAM
9 788175 974555
ISBN 9788175974555
N2003